मातृ शक्ति

मूल लेखक :
श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की
चतुर्थ महासमाधी पुण्यतिथि, मंगलवार
१२ जुलाई, १९६६ के उपलक्ष्य में
लखीमपुर तथा लखनऊ के
भक्तों द्वारा समर्पित।

— प्रकाशक —
योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी
(डिवाइन लाइफ सोसाइटी)
पो० शिवानन्द नगर,
जिला टिहरी-गढ़वाल (यू०पी०) हिमालय

★योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी (डिवाइन लाइफ सोसाइटी) के लिये श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा गणेश प्रिंटिंग प्रेस गुड़गावाँ (पंजाब) में मुद्रित ।

★मिलने का पता—
व्यवस्थापक,
शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
पो० शिवानन्द नगर,
जिला टिहरी-गढ़वाल(यू०पी
हिमालय ।

★प्रथम संस्करण १९६६
(प्रति ५००)

★इस पुस्तक को लखीमपुर ग्र.. लखनऊ के भक्तों के उदार धर्म दान से छपाया गया है। मातृ शक्ति उन्हें योग क्षेम प्रदान करें ।

॥ ॐ ॥

विषय सूची

॥ ॐ ॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु ॥

त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी :

अनुवादक

श्री सद्गुरुदेव

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

त्वमेवशक्तिरूपासि निर्गुणस्त्वं सनातनः

देवी कीर्तन

१ जय सरस्वती जय सरस्वती जय सरस्वती पाहिमाम् ।
जय सरस्वती जय सरस्वती जय सरस्वती रक्षमाम् ।।
जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी पाहिमाम् ।
जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी जय श्री लक्ष्मी रक्षमाम् ।।
जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे नमःॐ ।
जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे जय श्री दुर्गे शरणःॐ ।।

२ ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ ।
ब्रह्म शक्ति, विष्णु शक्ति, शिव शक्ति ॐ ।।
आदि शक्ति महाशक्ति पराशक्ति ॐ ।
इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति ॐ ।।

३ जय राधे जय राधे राधे जय राधे जय श्री राधे ।
जय सीते जय सीते सीते जय सीते जय श्री सीते ।।

४ गंगारानी गंगारानी गँगारानी पाहिमाम् ।
भागीरथी भागीरथी भागीरथी रक्षमाम् ।।

५ गौरी गौरी गंगे राजेश्वरी ।
गौरी गौरी गंगे महेश्वरी ।।
गौरी गौरी गंगे मात्तेश्वरी ।
गौरी गौरी गंगे महाकाली ।।
गौरी गौरी गंगे महालक्ष्मी ।
गौरी गौरी गंगे पार्वती ।
गौरी गौरी गंगे सरस्वती ।।

★★
★

सप्तशतीके कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'श्लोक', 'अर्ध श्लोक और उवाच' आदि मिलाकर ७०० मन्त्र हैं। यह महात्म्य दुर्गासप्तशतीके नाम से प्रसिद्ध है। सप्तशती अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली है। जो पुरुष जिस भाव और जिस कामना से श्रद्धा एवं विधि के साथ सप्तशतीका पारायण करता है, उसे उसी भावना और कामना के अनुसार निश्चय ही फल-सिद्धि होती है। इस बात का अनुभव अगणित पुरुषों को प्रत्यक्ष हो चुका है। यहां हम कुछ ऐसे चुने हुए मन्त्रों का उल्लेख करते हैं, जिनका सम्पुट देकर विधिवत् पारायण करने से विभिन्न पुरुषार्थों की व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सिद्धि होती हैं। इनमें अधिकाँश सप्तशतीके ही मन्त्र हैं और कुछ बाहर के भी हैं :—

(१) सामूहिक कल्याण के लिये

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

(२) विश्व के अशुभ तथा भय का विनाश करने के लिये

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥

(३) विश्व की रक्षा के लिये

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

(४) विश्वव्यापी विपत्तियों के नाश के लिये

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।।

(५) विपत्ति-नाश के लिये

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

(६) भयनाश के लिये

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।।

(७) रोग-नाश के लिये

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न बिपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।

(८) महामारी नाश के लिये

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ।।

(९) आरोग्य और सौभाग्य की प्राप्ति के लिये

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।।

(१०) बाधा-शान्ति के लिये

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ।।

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥

(१२) समस्त विद्याओं की और समस्त स्त्रियों में मातृभाव की प्राप्ति के लिये

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

(१३) सब प्रकार के कल्याण के लिये

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(१४) शक्ति-प्राप्ति के लिये

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(१५) प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥

(१६) विविध उपद्रवों से बचने के लिये

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।

(१७) मोक्ष की प्राप्ति के लिये

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥

ॐ

मां से प्रार्थना

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्ग दे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

या श्री; स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः ।
पापात्मनां कृतधियाँ हृदयेषु बुद्धिः ॥

श्रद्धा सतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा ।
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

उस दिव्य मां को नमस्कार है जो सभो प्राणियों में बुद्धि, करुणा, और सौन्दर्य के रुप में व्याप्त है । प्रिय माँ को नमस्कार है जो (भगवान) प्रभु शिव की अर्द्धांगिनी है । हे मां पार्वती तुम हो लक्ष्मो हो, तुम ही सरस्वती हो, तुम ही काली हो; तुम ही दुर्गा और कुण्डलिनी शक्ति हो । सभी पदार्थों में तुम ही व्याप्त हो। सबकी एक मात्र शरण तुम ही हो । तुमने समस्त संसार को वशीभूत कर रखा है । सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे तीनों गुणों का खेल मात्र है । मैं तुम्हारी स्तुति कैसे कर सकता हूं ? तुम्हारी कीर्ति वर्णनातीत है। तुम्हारा प्रताप अकथनीय है। त्राहिमाम् ! रक्ष्माम् !

हे पूजनीय माँ । तुमने इस माया को उत्पन्न किया हैं जिससे भ्रमित हो कर सभी प्राणी इस विश्व में भटक रहे हैं । समस्त विज्ञानों का उद्गम् तुम ही हो । तुम्हारो कृपा के बिना कोई भी प्राणी आध्यात्मिक साधना में सफलता प्राप्त करके अन्त

में मुक्ति नहीं पा सकता। तुम ही इस संसार का बीज हो तुम्हारे दो रूप हैं।— अप्रत्यक्ष अथवा अव्यक्त और प्रत्यक्ष अथव स्थूल विश्व। प्रलय काल में सम्पूर्ण जगत अव्यक्त रूप में समा जाता है। मुझे दिव्य नेत्र दो। मुझे अपना वास्तविक ऐश्वर्य पूर्ण रूप देखने दो। हे करुणामयी माँ! इस माया से पार होने में मुझे सहायता दो।

हे करुणामयी माँ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम ही मेरी रक्षक हो। तुम ही मेरा लक्ष्य हो। तुम ही मेरी एक मात्र सहायक हो। तुम ही मेरा पथ-प्रदर्शक और समस्त यातनाओं, पीड़ाओं और कष्टों को दूर करने वाली हो। तुम कल्याण का मूर्त रूप हो। तुम समस्त विश्व में व्याप्त हो। समस्त विश्व तुम से परिपूर्ण है। तुम समस्त गुणों का भण्डार हो। तुम मुझे अवश्य बचाओ। मैं तुम्हे बारम्बार प्रणाम करता हूं। हे यशस्वी माँ तुम्हें नमस्कार हो। समस्त स्त्रियां तुम्हारे अङ्ग हैं। मन, अँहकार बुद्धि, शरीर, प्राण और इन्द्रियाँ तुम्हारे ही रूप हैं। तुम परा-शक्ति और अपरा प्रकृति हो। तुम ही विद्युत्; आकर्षण शक्ति बल, सामर्थ्य, शक्ति और इच्छा हो। समस्त रूप केवल तुम्हारे ही रूप हैं। सृष्टि का रहस्य मुझ पर प्रकट करो। मुझे दिव्य ज्ञान दो।

हे प्रिय माँ तुम ही आदि शक्ति हो। तुम्हारे दो रूप हैं- रौद्र और शान्त। तुम ही विनय, सौम्यता; लज्जा, उदारता; साहस सहनशीलता और धैर्य हो। तुम भक्तों के हृदय में विश्वास, सज्जनों में उदारता, योद्धाओं में शौर्य और शेरों में क्रूरता हो।

ुझे मन और इन्द्रियों को संयमित करने की शक्ति दो। मुझे
ुम अपने रहने योग्य बनाओ। तुम्हें नमस्कार हो।

हे महामहिमामयी माँ! मुझे समदृष्टि कब मिलेगी और
रे मन की साम्यावस्था कब होगी? अहिंसा, सत्य और ब्रह्म-
चर्य का पूर्ण रूपेण पालन मैं कब कर सकूंगा? कब मुझे तुम्हारे
त्यक्ष दर्शन होंगे? मुझे अनन्त शान्ति और परमानन्द की प्राप्ति
ब होगी? कब मैं ध्यान मग्न हो तुम में समाधिस्थ हो सकूंगा?

हे दीप्तिमयी माँ! मैंनें कोई आध्यात्मिक साधना नहीं की है
और न ही गुरूजनों की सेवा की है। मैंने किसी व्रत तीर्थयात्रा,
ान, जप और ध्यान अथवा पूजा का अनुष्ठान भी नहीं किया है
ैंने धर्म शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं किया है। मुझ में न विवेक
ै न वैराग्य। मुझ में न पवित्रता है न मुक्ति की तीव्र आकांक्षा।
कमेव तुम हो मेरा परम आश्रय हो। मुझे तो तुम्हारा ही भरोसा
ै। तुम्हें मेरी मौन पूजा समर्पित हो। मैं तो तुम्हारा निरीह सेवक
ूँ। मेरे चक्षुओं के आगे से अज्ञान का पर्दा हटा दो।

हे दयामयी माँ! तुम्हें साष्टांग प्रणाम करता हूं। तुम
कहाँ हो? मेरा त्याग मत करो। मैं तो तुम्हारा ही बालक हूं।
ुझे निर्भयता और आनन्द के अन्तिम छोर तक पहुंचा दो। कब
मैं अपने नेत्रों से तुम्हारे चरण कमलों को देखूंगा? तुम तो परम
करुणामयी हो। जब पारस के स्पर्श से लोहा कंचन बन जाता है,

ॐ

जब गंगाजल में मिल कर अपवित्र जल भी पवित्र हो जाता
तो क्या तुम्हारे संस्पर्श से मुझ अधमात्मा का उद्धार न हो सकेग
तुम्हारा पावन नाम सदा हमारे अधर पुट पर हो।

दिव्य मां विषयक भारतीय विचार धारा (धारण

सभ्यता के उदय के साथ २ जब आदि मानव मातृ प्रधान समाज में रहता था तभी से दिव्य माँ की पूजा का श्री गणेश हुआ इस के बाद जैसे २ सभ्यता में उन्नति होती गई, मातृ प्रधान प्रणाली धीरे २ शिथिल हो गई और पिता परिवार का प्रमुख बन गया, जहां वह परिवार के शासक के रूप में माना जाने लगा, जिससे सभी मार्ग दर्शन और सम्मति लेते थे। परिणाम स्त ईश्वर की धारणा में भी परिवर्तन हुआ - ईश्वर को पितृ - भ से देखा जाने लगा। किन्तु साथ २ माँ की पूजा भी चलती र क्योंकि अपत्य स्नेह के कारण बालक के लिए मां सबसे अधि समीप है अतः मनोवैज्ञानिक रूप से भक्त को यह धारणा अधि आकर्षक लगी। तदन्तर हिन्दु धर्म में ईश्वर के मातृभाव औ पितृभाव में समन्वय का विकास हुआ, अतः लोगों ने सीता औ राम अथवा राधे और श्याम की इकट्ठी पूजा प्रारम्भ कर दी।

मनुष्य के मन की धारणा अपूर्ण अनुभव पर आधारित है। इस लिए आन्तरिक आदर्शवाद अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओं में बाहम और सम्बन्धित समानताओं से सहायता लेता है।

किन्तु ईश्वर में अथाह शून्य की धारणा की अपेक्षा उसके साथ हितैषी पितृभाव अथवा प्रिय दयालु मातृ भाव का सचेत सम्बन्ध स्थापित करना सुगम है। वास्तव में ईश्वर गुणातीत है, किन्तु साधक के आत्म सुधार और आध्यात्मिक उन्नति के लिए भलाई और गुण के निश्चित आदर्शों को उच्च मानना अत्यावश्यक है।

माँ बालक के प्रति अधिक दयालु होती है। किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा आप अपनी माँ से अधिक खुले हुए होते हैं यह माँ ही है जो तुम्हारी रक्षा करती है, पालन पोषण करती है, सान्त्वना देती है, प्रसन्न करती है, और सेवा करती है। वह तुम्हारी प्रथम गुरु है। वह अपने बच्चों के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधक का दिव्य माँ के साथ अधिक घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

विश्व जननी की उपासना अथवा पूजा से आत्म ज्ञान होता है। केनोपनिषद में यक्ष का प्रश्न इस विचार की पुष्टि करता है। मुक्त हृदय से माँ के पास जाओ। निष्कपटता और विनीतभाव से हृदय उनके सम्मुख खोल कर रख दो। विचारों को पवित्र और उच्च बनाओ और शिशु का भोलापन तुम्हारे मुख पर खेलता रहे। अपने अंहकार को, छलकपट

५ यधारा, आध्यात्मिक अर्न्तदृष्टि और कैवल्य का आनन्द प्रदान करेगी ।

आप सभी पर माँ दुर्गा की अनुकम्पा रहे ।

ॐ

श्री स्वामी चिदानन्द जी

(संक्षिप्त जीवनी)

श्री स्वामी चिदानन्द जी, जिनका नाम सन्यास ग्र से पूर्व श्रीधर राव था, का जन्म २४ जून १९१६ को हुअ इन के पिता श्री निवासा राब दक्षिण भारत के बहुत जमींदार थे और माता श्रीमती सरोजनी अति साधु स्वभा की एक आदर्श भारतीय नारी थी। यह पांच बच्चों में दूस तथा सुपुत्रों में सब से बड़े थे।

आठ वर्ष की आयु में श्रीधर राव पर उन के दादा एक मित्र श्री अनन्तैया का बहुत प्रभाव पड़ा जो कि उन रामायण तथा महाभारत की कथायें सुनाया करते थे। उस आयु से ही उन्हें तप करने, ऋषि बन कर भगवत् साक्षात्कार करने की लग्न लग गई ।

उन के चाचा श्री कृष्ण राव ने विश्व के दूषित प्रभाव से उन्हें बचाये रक्खा और उन में निवृत्त जीवन का ऐसा

बीज बोया जो समयानुसार अनुकूल मनोवृत्तिया, पनप कर सिद्धि का विशालकाय वृक्ष बन गया।

प्रारम्भिक शिक्षा उन्हों ने मंगलौर में पाई। १९३२ में यह मूथिया चैटी स्कूल मद्रास में प्रविष्ट हुये जहाँ उनकी गणना बड़े होनहार छात्रों में होती थी। अध्यापकों तथा छात्रों दोनों के ही हृदयों में उन्हों ने अपने आदर्शमय आचरण की एक गहरी छाप छोड़ी।

१९३६ में इन्हों ने लायोला कालेज में पदार्पण किया जहाँ केवल बहुत होनहार छात्रों को ही चुनाव में आने का सौभाग्य प्राप्त होता था। १९३८ में इन्होने बी. ए. की परीक्षा पास की। एक कट्टर ईसाई कालेज में इनके छात्रकाल का यह समय बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। इन के हृदय में यीशू मसीह और अन्य ईसाई संतों की शिक्षाओं तथा हिन्दू धर्म के महान् उपदेशो का पूर्ण रूपेण संयोग हो गया जिस के फलस्वरूप इन के लिए बाइबल में भी आत्मोत्सर्ग के उतने ही साधन हैं जितने कि वेद, उपनिषद् या भगवद्गोता में। इन की अन्तर्ज्योति भगवान यीशू और भगवान कृष्ण को एक हो रूप में देखती थी।

इन का परिवार अपने सदाचार तथा सद्व्यवहार के लि प्रसिद्ध था। इनके अपने जीवन में भी यह गुण प्रचुर मात्रा मे

.॰ .. थे । दान तथा लोक सेवा में भी इन का परिवार सदा ..र रहा । यह सभी गुण श्रीधर राव में समान रूप से थे हायता मांगने वाले को यह कभी भी निराश नहीं करते थे गैर दिल खोल कर दान देते थे।

कोढ़ियों की सेवा को इन्हों ने अपना धर्म बना लिया अपने घर के पास ही यह उन के लिये झोंपड़ियाँ बनाते और हर प्रकार से उन की देख रेख करते । यह अपने भाव में मग्न हो इस भान्ति उन की सेवा करते मानों देवताओं की ही पूजा कर रहे हों । आश्रम में आने के पश्चात् तो इन की इस भावना की और भीं पुष्टि हो गई । कुष्ट रोगियों को भी भगवान के रूप में देखने की क्षमता केवल इन जैसे महापुरुष ही रखते हैं आस पास के अत्यन्त दुःखी रोगी इन के पास आया करते थे और श्री स्वामी चिदानन्द जी सब को भगवान नारायण का रूप समझ उन की आदर, प्रेम तथा बड़ी तन्मयता से सेवा करते थे । इसी सेवा में मग्न इन के हाथ उस साक्षात् नारायण की पूजा करते थे । आश्रम में रहने वालों की सेवा के लिये यह अपने नित्य कर्म तक को भूल कर केवल उन को पीड़ा हरण के कार्य में ही तल्लीन रहते थे ।

दीन दुखियों की सेवा में व्यस्त रहते ही इन्हें आभा

होने लगा कि सब से पृथक इन का निजी कोई अस्तित्व नहीं है। वही परमात्मा सब में बसा हुआ है और इन की आत्मा जो इन सब आत्माओं की भान्ति परमात्मा का ही रूप है ; इन के शरीर में कुछ समय के लिये उपस्थित है।

इन की इस महान् सेवा के पात्र केवल मनुष्य ही नहीं थे बल्कि पक्षी तथा जानवरों की सेवा में भी यह सदा तत्पर रहते थे। दु:ख की मूक भाषा यह समझते थे। एक बार एक बीमार कुत्ते की सेवा की तो श्री गुरुदेव ने इन की बहुत प्रशंसा की। यदि इनके सामने कोई किसी जानवर को सताता तो यह उसे डांट तक दे देते थे।

श्री स्वामी जी एक दिन सांयकाल भ्रमण के लिए जा रहे थे कि मार्ग में उन्हो ने एक कुत्ता देखा जो मोटर के नीचे आने से कुचला गया था। पास जाने से पता चला कि वह अभी जीवित है। श्री स्वामी जी ने उसी समय पहले तो उसे पानी और दूध पिलाया तत्पश्चात् उस के चारों ओर ईंट और पत्थर की एक दिवार बना दी ताकि रात्रि में उसे कोई हानि न पहुँचा सके। प्रात:काल होते ही यह फिर उसी स्थान पर गए तो देखा कि कुत्ता पहले से अच्छा है। इन्हों ने तांगा किराए पर करके आश्रम के एक सहायक के साथ कुत्ते को

जानवरों के अस्पताल ऋषिकेश में ईलाज के लिये भेज दिया। किसी ने कहा स्वामी जी यह तो अवारा कुत्ता है, इस का ईलाज कौन करेगा। तो श्री स्वामी जी ने उत्तर देते हुये कहा कि यह स्वामी जी का कुत्ता है, वह स्वयं कुत्ते के ईलाज का खर्च देंगे कुत्ता ईलाज करने से ठीक हो गया। श्री स्वामी जी ने कुत्ते और भगवान में अन्तर नहीं पाया।

पिछले वर्ष गुरुदेव के आराधना दिवस महोत्सव पर कुछ लकड़ी लंगर में काम के लिये ऊपर पहाड़ी पर चढ़ानी थी। सभी लोग इतनी लकड़ी इतनी ऊँचाई पर ले जाने में जी चुरा रहे थे। वे लोग अभी आराम ही कर रहे थे कि श्री स्वामी जी स्वयं ही एक भारी लकड़ी का बोझा उठा ऊपर ले गये। यह देख सभी लज्जित हुए और कम समय में ही सारी लकड़ी निश्चित स्थान पर पहुँचा दी गई।

कोढ़ियों के प्रति इन की श्रद्धा, सेवा तथा सहायता से प्रभावित हो, सरकार की ओर से ब्नो मुनि-की-रेती कुष्ट निवारण संघ के, पहले इन्हें उपप्रधान और फिर प्रधान चुना गया।

बाल्यकाल से ही श्रीधर राव धनाढ्य परिवार से होते हुए भी सांसरिक सुखों से घृणा, एकान्त वास और ध्यान आदि

से प्रेम करते थे । पढ़ाई में भी इन्हें अपने कालेज की पुस्तकों के स्थान पर आध्यात्मिक पुस्तकें अधिक रुचिकर लगती थीं। लायोला कालेज तक भी इनकी यह लग्न वनी रही । श्री स्वामी रामकृष्ण, श्री स्वामी विवेकानन्द और श्री गुरुदेव जी को कृतियाँ इन्हे विशेष प्रिय थीं।

श्रीवर पुस्तकों से ज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् उसे बाँट दिया करते थे। यहाँ तक कि इन के सम्बन्धी, अड़ोसी-पड़ोसी तथा मित्र वर्ग इन में गुरु भावना रखते थे। यह इन सब को सदाचार, प्रेम, त्याग, सेवा और भक्ति का उपदेश दे उन्हें राम-नाम जप के लिए प्रोत्साहन देते थे। यह लगभग बीस वर्ष के होंगे जब कि इन्हों ने बच्चों को राम-तारक मन्त्र की दीक्षा देनी आरम्भ कर दी। इन के अनुयाइयों में एक श्री योगेश नामक भक्त थे जिन्हों ने निरन्तर बारह वर्ष तक इस बालक गुरु की आज्ञानुसार राम-तारक मन्त्र का जाप किया।

श्री स्वामी जी श्री रामकृष्ण और श्री स्वामी विवेकानन्द जी के उत्कट श्रद्धालु थे। मद्रास में यह नित्य प्रति मठ में जा कर सत्संग में भाग लिया करते। श्री स्वामी विवेकानन्द जी के त्याग की दृढ़ता इनके विमल हृदय में सदैव गूंजती रही। साधु सन्त समागम की इन की पिपासा कभी शान्त न हो

पाती।

जून १९३६ में श्रीधर घर से भाग निकले। ढूंढने पर तिरूपथो के पावन तीर्थ के पास एक आश्रम में इन्हें पाया गया। बहुत कहने-सुनने पर इन्हों ने घर वापस आना स्वीकार कर लिया। यह अल्पकालिक वियोग, फिर होने वाले परिवार, मित्र तथा सांसारिक सुखों के महान् त्याग की ही मानों एक तैयारी थी। किन्तु घर पर रहते हुये भी इन का हृदय आध्यात्मिक विचारों में तल्लीन रहता हुआ ज्ञान-गंगा के अनन्त प्रणवनाद को सुनने में सलग्न रहता। तिरूपथी से वापस आ कर सात वर्ष तक इन्हों ने अपने आप को धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय, लोक सेवा, एकान्त, आत्म-निरोध, इन्द्रिय-दमन भोजन और वस्त्रों में सादगी, सांसारिक सुखों के त्याग में विलीन कर दिया जिससे इन का आन्तरिक आध्यात्म बल और भी प्रज्वल्लित हो उठा।

अन्तिम निर्णय का समय आ गया। १९४३ में इन्हों ने श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज से ऋषिकेश शिवानन्द आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा मांगी।

आश्रम में पहुँचते ही इन्हों ने अस्पताल का भार सम्भाल लिया। इन की रोग निवारण को कुशलता की प्रसिद्धि

दूर-दूर तक फैले विना न रह सकी। कुछ ही दिनों में शिवानन्द आश्रम के अस्पताल में रोगियों की भीड़ लगने लगी।

आश्रम में आने के कुछ दिनोपरान्त ही श्रीधर राव ने अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय दिया। भक्त वृन्द के लिए यह प्रवचन देते और पत्रिकाओं के लिए लेख भी लिखते। जब १९४८ में योग वेदान्त वनस्थली विश्वविद्यालय (जिसे अब योग वेदान्त वनस्थली विद्वत्परिषद कहते हैं) की स्थापना की गई तो गुरुदेव जी ने इन्हें उचित सम्मान देते हुए वहाँ का उपकुलपति तथा राजयोग का अध्यापक नियुक्त किया। पहले वर्ष में ही इन्हों ने महर्षि पातञ्जलि के योग सूत्रों की ओजस्वी व्याख्या द्वारा समस्त छात्रों को स्फूर्ति प्रदान की।

इस पहले वर्ष में ही इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "ज्योति स्त्रोत' लिखा। यह ग्रन्थ श्री गुरुदेव की वह जीवनी है जिस के विषय में स्वयं उन्हों ने एक बार कहा था " शिवानन्द तो चला जायेगा किन्तु ज्योति स्त्रोत सदैव जीवित रहेगा।

इतना कार्य भार सम्भालने और कठिन तपस्या कर पर भी इन्हों ने समय निकाल कर श्री गुरुदेव के पथप्रदर्शन १९४७ में योग कौतुकगृह की स्थापना की जिस में पूर्ण वेदान दर्शन की व्याख्या, योग साधना के नियम, चित्रों तथा उदाहरण

में बताए गये हैं।

१९४८ के अन्त में जब श्री निजबोध जो दिव्य जीवन मण्डल के प्रधान सचिव के पद से निवृत हुए तो श्री गुरुदेव जी ने उन के स्थान पर श्रीधर राव जी को नियुक्त किया। मण्डल को सुचारू रूप से चलाने का काम इन के कुशल कधों पर आ पड़ा। इन्हों ने अपनी योग्यता द्वारा आश्रम के सभी कार्यों को कर्म योग का रूप प्रदान किया।

१० जुलाई १९४९ के गुरु पूर्णिमा के पावन दिवस पर श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने दीक्षा दे कर इन को श्रीधर राव से सन्यासी श्री स्वामी चिदानन्द जी बना दिया।

एक कुशल कार्य कर्त्ता होने के नाते दिव्य जीवन मण्डल की शाखाओं का पथ प्रदर्शन करने के अतिरिक्त १९५० में श्री गुरुदेव जी की अखिल भारतीय यात्रा का आयोजन तथा सफलता भी चिरस्मरणीय रहेगी। इस के फलस्वरूप दिव्य जीवन आन्दोलन को बहुत पुष्टि मिली। देश के बहुत से राजनैतिक व सामाजिक नेता, उच्चाधिकारी और अन्यान्य रियास्तों के शासक इस आन्दोलन से दिव्य जीवन की ओर प्रवृत्त हुए।

पश्चिम जगत में दिव्य जीवन का सन्देश सुनाने के लिए

श्री गुरुदेव जी ने १९५९ में श्री स्वामी चिदानन्द जी को अमेरिका, कनेडा, स्विटज़रलैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में अपने निजी दूत के रूप में भेजा। अमेरिका में अग्रगण्य वेदान्तिक तत्ववेता के रूप में इस योगी की बहुत प्रशंसा की गई। अमेरिका तथा यूरोप के भ्रमणोपरान्त १९६२ में यह वापस स्वदेश लौटे।

अप्रैल १९६२ में यह दक्षिण भारत में तीर्थ यात्रा के लिए गए जहाँ मन्दिरों तथा तीर्थ स्थानों पर इन के सुन्दर प्रवचन हुए। यह दक्षिण भारत से जुलाई १९६३ में श्री गुरुदेव जी की महा समाधी के केवल दस दिन पहले लौटे जो कि एक चमत्कारिक घटना थी।

अगस्त १९६३ में यह श्री गुरुदेव जी के स्थान पर दिव्य जीवन मण्डल के प्रधान तथा वेदान्त वनस्थली विद्वत्परिषद के कुलपति चुने गए। तत्पश्चात् श्री गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की कृपा से इन की अध्यक्षता में दिव्य जीवन मण्डल के तीन अखिल भारतीय अधिवेशन सम्पन्न हुए। प्रथम दिसम्बर १९६३ में देहली में, द्वितीय दिसम्बर १९६४ में पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ के भव्य नगर में और तृतीय १९६५ में मैसूर में। इन अधिवेशनों द्वारा समस्त भारत में दिव्य जीवन की

एक लहर सी दौड़ गई है।

सितम्बर १९६५ में नवरात्र महोत्सव एवं शक्तिउप
सना के महापर्व पर आश्रम में हरिजन पूजा के अवसर प
श्री स्वामी जी महाराज ने अभ्यागतों (हरिजनों) की सेवा प्रभ
रूप में की और उन की जूठन का प्रसाद पा कर अपने आ
को कृतज्ञ माना। श्री स्वामी जी का पदार्पण जहाँ जिस नग
में भी होता है वहीं एक विशेष भाव पूर्ण भव्य स्वागत किय
जाता है इन का।

श्री स्वामी शिवानन्द जी के महासमाधिस्थ होने के उप
रान्त भी आश्रम में किसी भी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं अ
पाई। यह सब एक महान् गुरु की विशेष गुरु कृपा है ए
महान् शिष्य पर।

प्रातःस्मरणीय श्री सद्गुरुदेव जी से यह हार्दिक प्रार्थन
है कि जिज्ञासुओं का पथ प्रदर्शन चिरयुग तक श्री स्वामी चिदा
नन्द जी महाराज द्वारा होता रहे।

नमश्चण्डिकायै

प्रथम रात्रि

पराशक्ति

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त जीव मात्र में विष्णुमाया नाम से कही जाती है उसे नमस्कार है ! नमस्कार है !! नमस्कार है !!!

महामाया परब्रह्म की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयंकारी शक्ति मन-वचन-कर्म से अगोचर है। पराशक्ति माँ ही अनिर्वचनीय परम शान्ति, अनन्त तथा अगम्य है।

मंगलमयी माँ के पूजन का परम पावन पर्व जो कि आज प्रथम नवरात्रे से विजय दशमी तक चलता है- माँ की दैवी शक्ति की विजय तथा आसुरी शक्ति की पराजय का प्रतीक है। वर्ष भर में इन दिनों हमें सुअवसर प्राप्त होता है कि माँ की पूजा-अर्चना-वन्दना कर प्रार्थना करें महाशक्ति से कि हमें इस तिमिराच्छादित भवसागर से पार ले चले। हमारे लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियों के लिए प्रयत्न विजयी हों। माँ ही पराशक्ति है जिसका सहारा ले साधक वृन्द अपने चरम लक्ष्य तक

पहुंच पाते हैं। आत्मा का परमात्मा में विलय होता है विना मातृ अनुकम्पा के मोक्ष प्राप्त करने में सभी अशक्त हैं आओ ! हम भी इस विशेष परम पावन पर्व पर माँ से शक्ति का वरदान लें।

भारत में हिन्दु धर्म में चार पाँच सम्प्रदाय हैं। उनमें से एक शैव्य है – जो परब्रह्म के कल्याणकारी स्वरूप शिव के उपासक हैं। दूसरे भगवान् विष्णु के उपासक तथा तीसरे पराशक्ति की उपासना करने वाले शाक्त कहलाते हैं। दो अन्य मत भी हैं–जो ईश्वर की गणपति तथा सूर्य के रूप में उपासना करते हैं। सूर्य उपासक भगवान को परमज्योतिर्मय जगद्पालक के रूप में मानते हैं।

नवरात्तों में शक्ति का विशेष पूजन होता है। यह उत्सव शक्ति उपासक शाक्तों की परम्परा से चला आ रहा है। बंगाल तथा आसाम में शाक्त अधिक मात्रा में हैं। माँ की स्तुति में उनका सर्वोच्च ग्रन्थ है दुर्गा-सप्तशति अथवा देवी महात्म्य है। सप्तशति में सात सौ श्लोक हैं। माँ अपने चण्डिका नाम से भी सुविख्यात है इसी लिए बंगाल तथा गढ़वाल के इन भागों में देवी महात्म्य या दुर्गा सप्तशति का दूसरा नाम चण्डीपाठ भी है।

दुर्गा सप्तशति का पाठ बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। शास्त्रानुसार इसके कड़े नियम हैं। प्रथमाध्याय में देवी तत्व की व्याख्या है जिसका पाठ आज किया गया है।

यह तत्वविवेचन एक राजा और सौदागर ने एक महा मुनि के मुखारविन्द से कहानी के रूप में श्रवण किया। यह दैवी गुणों की रहस्य पूर्ण व्याख्या भगवती के वास्तविक स्वरूप और सत्य का विवेचन करती है। इसमें वर्णित सुन्दर स्तुति द्वारा माँ को सहज में ही रिझाया जा सकता है। दुर्गासप्तशति का सम्पूर्ण पाठ शक्ति उपासकों के लिए बड़ी महत्व पूर्ण साधना है। इस तत्त्व का विवेचन संक्षिप्त रूप में आपके सामने रखा जाएगा।

देवी महात्म्य का सारांश

आरम्भ इसका इस प्रकार है। पूर्वकाल में सूर्यवंश में जिसमें भगवान श्री रामचन्द्र जी अवतरित हुए थे – सुरथ नामक चक्रवर्त्ती राजा हुए। शत्रुओं से पराजित हो उसे अपने राज्य से पृथक् होना पड़ा। प्रजा के मोह तथा राज्य की ममता का आकर्षण उसके मन में बना रहा। मेरे वे दुष्ट नौकर राज्य का संचालन अब धर्मनीति के अनुसार नहीं कर रहे होंगे आदि विचार उसके मन को उद्वेलित करने लगे। इ

विचारों से बोझिल तथा पूर्व घटित घटनाओं की समृति में व्यथित हृदय राजा सुरथ मेधा महर्षि के मनोरम आश्रम में पहुंचा। महर्षि के शिष्य वर्ग, आश्रम की प्राकृतिक छटा, शान्ति एवं पावनता ने उसे वहीं ठहरने के लिए विवश कर दिया। तत्पश्चात् उसी प्रकार की व्यथा से व्यथित गृह त्याग कर आने वाला समाधी नामक एक वैश्य उस आश्रम में आ निकला। दुर्भाग्य वश सब निजिसम्पत्ति से वंचित वैश्य बलात् स्वजनों द्वारा घर से निकाला जा चुका था।

उन दोनों को आभास होने लगा कि उन पर आने वाले [illegible] का प्रहार एक ही ढग का है। दोनों की संपत्ति छिन [illegible] है। स्वजनों द्वारा घर से निकाले जा चुके हैं। स्नेही बिरोधी बन कर रह गए हैं। दोनों शत्रुता एवं विरोध के ग्रास बन रहे हैं। इतना होने पर भी उनका मन रह-रह कर उन्हीं लोगों की ओर जाने लगा जिनके कारण उनको यह दुःख दर्द और निराशा एवं खिन्नता के दिन देखने पड़े।

इस विषय पर वह दोनों परस्पर विचार विनिमय करने लगे कि मन का स्वभाव कैसा विचित्र है ? यह बारम्बार उन्हीं लोगों की मोह-ममता में आसक्त है जिनसे अतिरिक्त दुःख दर्द के कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका। इस गोरख धन्धे को सुलझाने

में असमर्थ वह दोनों मेधा महर्षि की शरण में गए इस भाव से कि वह उनकी समस्या को सुलझाएं। उन दोनों ने प्रश्न किया हे महामुने ! हमारा मन अपने वश में नहीं है। हमें इस बात का दुःख है कि खोये हुए राज्य पुत्र - बान्धव तथा अन्य सभी की ममता अभी तक हमारे मन में बनी हुई है। इन दोषों को जानते हुए भी हमारा मन अनासक्त नहीं हो रहा। इस का क्या कारण है ? हमें इस बिचित्र मानसिक भ्रम से रहित कीजिए।

इस प्रश्न में न केवल राजा सुरथ और वैश्य समाधी का हित ही अलक्षित है वल्कि सर्व हित संनिहित है। प्रत्येक नर-नारी के हृदय में ऐसी उथल पुथल चलती है।। महर्षि मेधा ने इस प्रश्नोत्तर में माँ दुर्गा की महानता बड़े ही सुन्दर रूप में की। उन्हों ने कहा आयुष्मन् ! मानव मन में विचित्र प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं जिससे वह विवेक रहित हो बार-बार उन्हीं वस्तुओं और व्यक्तियों से आसक्त होता है जो कि उसके दुःख का कारण होते हैं। यह भ्रमावरण भी माँ की ही अलौकिक शक्ति है। इसी देवी ने चराचर विश्व को जन्म दिया है। महामाया का आवरण इतना शक्तिशाली है कि यह संसार एक से अनेक तथा अव्यक्त से अनन्त

अकथनीय शक्ति है। यही अगम्य शक्ति विश्व की उत्पा
स्थिति और संहार के खेल की रचयिता है। यही वह शक्ति
है जिसके द्वारा यह जगत अन्त में विशुद्ध परम तत्व में विली
हो जाता है।

राजा सुरथ और वैश्य समाधी महामाया के विषय
ज्ञान प्राप्ति की लालसा से महर्षि मेधा से प्रश्न करते हैं। उ
के प्रश्नोत्तर में महर्षि मेधा माँ के स्वरूप की व्याख्या सात स
श्लोकों में वर्णित करते हैं। पराशक्ति के परम तत्वों क
व्याख्या करने के पश्चात् महर्षि मेधा राजा सुरथ और समाध
नामक वेश्य को योगाभ्यास तथा शक्ति उपासना की सम्मा
देते हैं। इस प्रकार तदन्तर अर्चना-उपासना के उन दोनों प
माँ की विशेष कृपा अवतरित होती है। और उनकी मनो
कामना पूर्ण होती है।

माया और ब्रह्म एक हैं।

दुर्गा सप्तशक्ति में देवी तत्व की व्याख्या है कि कि
प्रकार जगज्जननी महामाया ही सब कुछ है। यह परिवर्तनशी
संसार जो कि हमारे सामने है इसी परब्रह्म की शक्ति
उत्पन्न हुआ है। शक्ति, महाशक्ति, पराशक्ति उसी के नाम हैं
यह प्रश्न सभी तत्ववेत्ताओं के मन में उठता है कि

पराशक्ति और महाशक्ति में क्या सम्बन्ध है । इस विषय पर अनेकानेक विचारधाराऐं मिलती है। परन्तु सिद्ध पुरुषों ने यह स्पष्ट किया है कि महामाया ही पराशक्ति है । तत्वरूपेण परब्रह्म तथा पराशक्ति एक ही है । मातृशक्ति द्वारा ही संसार की प्रतीती हुई है। ब्रह्म और शक्ति वाह्य रूप से भिन्न होते हुए भी एक रूप हैं और अभिन्न होते भी भिन्न मालूम पड़ते हैं जैसे एक सिक्के के दो पहलू। परब्रह्म महाशक्ति के बिना भासित नहीं होते । ब्रह्मशक्ति स्वयं परब्रह्म स्वरूपिनी है। योगीजन हमें बतलाते हैं कि किस प्रकार महाशक्ति गोचर-अगोचर की संयोजक है। महामोहा ही समस्त जगत के कारण और प्रभाव को नियोजित किए हुए हैं। कारण और प्रभाव वाह्य रूप से पृथक् पृथक् होते हुए भी एक ही वस्तु के दो कोण हैं।

परब्रह्म अचल, अनन्त और अगाध है इसलिए उसके चलने का प्रश्न ही नहीं उठता । महाशक्ति जिसे हम भगवती नाम से भी पुकारते है परब्रह्म की क्रियाशक्ति कहलाती है। महामुनियों से सुनते हैं कि ब्रह्म और शक्ति इस प्रकार अभिन्न हैं कि जैसे दूध और उस की सफेदी, आग और उस की गरमी, साँप और उसकी टेढ़ी चाल। ज्यों ही दूध का ध्यान करते हैं तो उस की सफेदी, अग्नि का ध्यान करते हैं तो उस की गरमी हमारे सामने आ जाती है। अग्नि में से उस दाह शक्ति को पृथक् कर दिया जाये तो अग्नि को अग्नि नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म और शक्ति इसी प्रकार अभिन्न हैं जिस प्रकार अग्नि और उस की दाह शक्ति। यदि ईश्वर अग्निहै तो भगवती उस की दाह शक्ति है।

इस अद्भुत सम्बन्ध की व्याख्या के लिए बिजली की बैटरी का आधुनिक उदाहरण भी दिया जा सकता है। बैटरी को कहीं भी ले जायें, विद्युत शक्ति उसमें अदृश्य रूप में छिपी रहती है। देखने मात्र

ज्यों ही उस बैटरी को इंजन के साथ जोड़ दिया जाता है त्यों ही छिपी हुई विद्युत शक्ति अद्भुत क्रियाशक्ति के रूप में उत्पन्न हो जाती है। फिर उसी शक्ति से बल्ब जलना, झटका लगना, पानी का ठंडा गर्म होना; ध्वनि का होना आदि अनेक काम होतेहैं। महामाया को अपनी अनन्त-अगाध-अचलावस्था में परब्रह्म कहा जाता है जो सब नाम रूपों से परे हैं। परन्तु यही शक्ति जब क्रियाशक्तिके रूपमें प्रकट होती है तो समस्त ब्रह्माण्ड में अनेक नाम रूपों में निवास करती है। महामाया भगवती ही विद्युत शक्ति, सूर्य शक्ति, अगाधशक्ति, चल शक्ति, सुगन्धि शक्ति, स्वर शक्ति और संसार की सब दृश्य और अदृश्य तथा बुद्धिशक्ति आदि स्वयं ही है। मन की सब वृत्तियां, भाव, आन्तरिक और वाह्य दृश्य भगवती द्वारा ही उद्भासित होतेहैं। भगवती ही इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करने वाली है। "सर्व शक्तिमयं जगत" । यही त्रिकालावादित सत्यहै। इस संसार में स्थूल से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म तक माँ का ही प्रकाश है। यही विश्वरूपा सभी नाम रूपों में प्रतिबिम्बित है। केवल महामाया द्वारा ही जगतोत्पति सम्भव है।

इसी सर्वोच्च शक्ति के भिन्न भिन्न रूपों की पूजा-अर्चना इन नवरात्रों में की जाती है। शाक्त इस की महाकाली या दुर्गा, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूप में पूजा करते हैं। इन नौ दिनों के पूजन को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम तीन नवरात्रों में महासरस्वती की पूजा की जाती है। इस विभाजन का विशेष महत्व है जिसकी व्याख्या शेष आठ नवरात्रों में की जाएगी।

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

द्वितीय रात्री

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी सब प्राणियों में शक्ति रूप से विराजमान है उसको नमस्का है, नमस्कार है, बार बार नमस्कार है ।

जो देवी परब्रह्म की अवर्णननीय अद्भुत और अचिन्तय शक्ति कहलात है । जो ज्योत्सनामयी दिव्य शक्ति असंख्य ब्राह्माण्डों का उत्पादन करने वाली है । जो सर्व नाम रूपों की धात्री तथा उनकी स्थिति और प्रलय क कारण है और जिस को कृपा से समस्त जीव मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं, उस पराप्रकृति सर्वकारणीय महादेवी को सदा–सर्वदा नमस्कार है ।

सारभूता सर्वकारणीय माँ के इस भाव को समझना सहज और सुगम है । क्योंकि जन्म के समय सर्व प्रथम जो संस्कार जीव प्राप्त करता है वह है मातृभाव । सब से प्रथम स्मृति जो सदैव आती है, वह है माँ की गोद में बैठ कर उस की स्नेहासिक्त दृष्टि का सुख । बच्चे के लिए माँ वात्सल्य और लालन पालन का केन्द्र है । माँ एक आदर्श स्रोत है जहाँ से जीवन सुख, सुरक्षा और पालन–पोषण प्राप्त होता है । इस प्रकार यह भावना जब वृहदाकार समष्टि में बदल दी जाए तो बड़ी स्वाभाविक, प्राकृतिक और सुगम जान पड़ती है । इस भान्ति महाशक्ति मी महिमा-- जो सब के लिए अद्भुत प्रेम, पालन--पोषण और सुरक्षा प्रदायनि है , हिन्दू धर्म ग्रन्थों मे गाई गई है ।

आज हम विनम्र भक्ति भाव से माँ के शुचि रुचिर चरणारविन्द क पूजन उस के कुछ गुणों की व्याख्या द्वारा करेंगे । ऐसा करते हुए भी हमे

सजग रहना चाहिए कि यह सुअवसर जिस में हम मां की पूजा--अर्चना कर उस की महिमा का गायन करते हुए उस की महानता का मनन करते हैं-- उस महामयी अनन्त शक्ति की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। उस का स्मरण, उस का गुणगान तथा नाम--जप, उसे माँ कहने का सौभाग्य उस की कृपा के बिना दुर्लभ है। कृपा, दया, प्रेम और वात्सल्यता स्वाभाविक गुण है। इसीलिए यह उसकी कृपा है कि हम मानसिक रूप से शब्दों द्वारा उस का शृंगार कर आज इस महापर्व पर भक्तिभाव से उस की पूजा--अर्चना आदि करते हैं।

मां, मां है! सर्वोपरि परम सत्य परब्रह्म है। परन्तु माँ वह है जिसे हम जैसा जानते हैं तथा जो हमारे ज्ञान से परे अगम्य पुरुष है वही सर्वोपरि परब्रह्म है। हम अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रियां द्वारा जो जानते हैं वह अतिरिक्त मां के स्वरूप के कुछ भी नहीं। यह ज्ञानजन्य छोटा सा ब्रह्माण्ड, यह अगणित तारे, सूर्य और चन्द्रमा तो उस की अनन्तता का एक अणुमात्र हैं। ऐसे अनेकों ही ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति तथा उनका लय होना माँ की असीम प्रकृति में सर्वदा होता रहता है। वह सब नाम रूपों की शक्ति-स्वशक्ति और कारण--कारणी शक्ति है। वह केवल इस जगत की ही कारण-कारणी नहीं बल्कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार की शक्ति प्रदान करने वाली वही माँ है। वह अनेकानेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरों की माँ है। अभिप्राय यह कि वह सब शक्तियों की शक्ति है। सब शक्तियां उस की खेलमात्र हैं। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी इस आदि शक्ति माँ का ही स्वरूप हैं। सरस्वती के रूप में ब्रह्मशक्ति, लक्ष्मी के रूप में विष्णुशक्ति और पार्वती के रूप में वह शिव शक्ति सब में विराजमान है।

अविद्या और विद्या

महाशक्ति के यह दो स्वरूप हैं। हिन्दू भक्त इन दोनों स्वरूपों की पूजा करते हैं, यह अति सुन्दर और महत्त्वपूर्ण भाव है। महामाया अविद्या के रूप में इस मिथ्या जगत के आभास में सब प्राणियों में स्थित है। यह जन्म-मरण के चक्र का विचित्र खेल-खेल रही है। इसीलिए इसे अविद्या के रूप में माना जाता है जो कि आध्यात्म विद्या के विरुद्ध है। महाशक्ति मुक्ति के रूप में भी है, इस रूप में वह अपने बच्चों को देख कर हंसती है और उनको अविद्या से छुटकारा दिलाती है। इस भाव में मां की हम मुक्ति रूपा या विद्यामाया के रूप में पूजा करते हैं। चित्रकारों ने इस भाव को दर्शाने के लिए चिन्मयी मां का चित्र इस प्रकार उतारा है कि एक हाथ में मां के रस्सी है जिससे वह बांधती है और दूसरे हाथ में तेज कटार है जिससे वह अपनी कृपा होने पर बन्धन मुक्त करती है। इस भान्ति मां विद्या और अविद्या का एक अद्भुत मिश्रण है। इसीलिए वह अनिर्वचनीय है, अगम्य है।

इन दोनों विद्या और अविद्या की शक्तियों द्वारा मां नाटक खेल रही है। शक्ति के पुजारियों ने मां की उपासना द्वारा मां की कृपा और साक्षात्-कार प्राप्त किया है और मां के वास्तविक स्वभाव और खेल को इस प्रकार वर्णित किया है। हम सब जानते हैं कि जब कुछ बच्चे इकट्ठे होकर खेलना चाहते हैं तो वह यह नहीं जान पाते कि क्या खेल खेलें। तब वह बच्चे घर में दादी अम्मा के पास जाते हैं। दादी अम्मा बच्चों के अनुरोध और निजी प्रेम वश उन्हें खेल खिलाने के लिए मान जाती हैं। छुपने और खोजने की खेल आरम्भ होती है। बच्चों को दौड़--दौड़ कर खेलने का आदे-श देती है दादी अम्मा। बच्चे खेल में मस्त हो दौड़ कर एक-दूसरे को पकड़ते हैं। इस प्रकार छूआ-छू की खेल चलती रहती है। परन्तु जब कोई बच्चा यह महसूस करता है कि वह खेल २ कर अब थक चुका है, तो उससे छु-

छुटकारा पाना चाहता है। तब वह बच्चा आकर दादी अम्मा को छू लेता है। जो दादी अम्मा को हाथ लगा देता है वह खेल से मुक्त हो जाता है। फिर उसे कोई भी पकड़ नहीं सकता। जैसे-जैसे खेल चलता रहता है दादी अम्मा खेल की प्रगति देखती जाती है और खेलते हुए बच्चों की देखभाल करती जाती है। अन्त में बच्चे उस को छू कर खेल से मुक्त हो जाते हैं इसी प्रकार यह संसार भी मां द्वारा निर्मित एक बच्चों का खेल है। जो कोई भी इस निरन्तर विषयों की भाग-दौड़ से ऊब चुका है और खेल से मुक्त होना चाहता है उसे केवल माँ की ओर दौड़ कर उसे छू लेना होगा। इस प्रकार वह सदा के लिए खेल के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस तरह शाक्त भक्तों ने मां के इस सांसारिक खेल के निर्माण तथा समाप्ति का वर्णन बड़े प्यार तथा मातृभाव से किया है।

विचित्र मां काली

जब हम मां के अन्य रूपों का ध्यान करते हैं तो हम एक विकट समस्या में उलझ कर रह जाते हैं। सर्व प्रथम दुर्गा पूजा के दिन मां काली का जो रुप हमारे सामने आता है न केवल विदेशियों के मन में ही भ्रम उत्पन्न करता है बल्कि बहुत से साक्षर भारतीय हिन्दू भी चिन्मयी मां काली के भयानक तथा विध्वंसकारी गुण को समझ नहीं पाते।

बंगाल प्रदेश में दशहरा के अवसर पर मां दुर्गा और महाकाली की ही पूजा होती है। बहुत से लोगों के लिए काली एक भयानक नाम प्रतीत होता है। हम हिन्दू भी माँ काली के पुजारियों को तामसिक व्यक्ति मानते हैं जब कि माँ काली को रौद्र देवी। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि दक्षिण भारत में माताएँ रक्तजिह्वा महाकाली के मुण्डमाला पहने, खड्ग, खप्पर लिए और कटी भुजाओं का बाना धारण किए हुए चित्र को

मां काली

तुरन्त घर घर में से हटा देतीं हैं। यदि काली के प्रति उनका यह भाव ठीक है तो काली की पूजा मातृभाव में हम कैसे कर सकते हैं ?

यह एक स्वाभाविक दोष है जिस का निवारण जरूरी है। मां कभी भी रौद्र और भयानक नहीं होती। वह सदा-सर्वदा प्रेममयी तथा दयामयी है। मां काली के रूप में पराशक्ति की व्याख्या साधारण सी है। न तो यह कठिन है और न ही इसमें कोई उलझन भरा तत्व और विचार-धारा है। वह बड़ी ही स्वाभाविक तथा साधारण है।

मैं एक सहज और आधुनिक उदाहरण आपके सामने रखता हूं। आजकल हमारे पास पैनसलीन *(Penicillin)* और बहुत सी माइसीनज़ *(mycins)* एनटीबाईटिक्स *(antibiotics)* आधुनिक औषधियाँ हैं। इनको इस युग की संजीवनियां कहा जाता है और करोड़ों प्राणी इनके प्रति कृतज्ञ हैं। परन्तु मैं आपको बतलाता हूं कि कैसे यह संजीवनी बूटियां जीवन प्रदान करने के साथ-साथ घातक भी मानी जाती हैं। यह शरीर में जाकर रोग के कीटाणु-ओं पर आक्रमण कर उन्हें मार देती हैं। जब आप पैनसलीन का प्रयोग करते हैं तो रोग के कीटाणु नष्ट हो जाने के कारण रोग भी मिट जाता है। आप स्वस्थ हो जाते हैं। अब आप ही बतायें कि क्या यह उचित होगा कि इन स्वास्थ्य प्रदायिनी औषधियों को विनाश कारक औषधियां भी कहा जाए ? यदि इन औषधियों को भयंकर तथा विनाशकारक कहना उचित है तो माँ काली को भी भयंकर तथा विध्वसकारी कहा जा सकता है।

कल्याणकारी संहार

माँ काली संहार करती है कल्याण के लिए और अज्ञान तिमिरावरण को हटाती है ज्ञान प्रदान करने के लिए। अन्धकार दूर करती है ज्योति के

साक्षात्कार के लिए और सांसारिक दुःख दर्द तथा संकटों से मुक्त करती है परमानन्द और मोक्ष प्रदान करने के लिए। इस प्रकार माँ जीव के समस्त बन्धनों को काट देती हैं। वह भयंकर वस्तुओं के लिए अति विकराल और विनाशकारिणी होने पर भी भक्त जनों के लिए मंगलमयी है। मां स्वयं ही अपनी प्रकृति के एक भाग को नष्ट करती है। जिस प्रकार हम मन की किसी दुर्बलता को मन की ही इच्छा शक्ति से नष्ट कर देते हैं ठीक उसी प्रकार माँ अपने काली रूप में अविद्या को नष्ट कर हमें परब्रह्म तक ले जाती है।

इस तरह देखते हैं कि महाकाली के वैभव द्वारा अज्ञान के बन्धन से हम मुक्त हो जाते हैं यही भाव लेकर शाक्त भक्त माँ का काली रूप में पूजन करते हैं और प्रार्थना करते हैं माँ से कि "हे कपाली माँ! मैं मनोविकारों से आवद्ध हूं। अहंकार एवं इन्द्रिय विषयों ने मुझे बुरी तरह घेर रक्खा है। शतरिपुओं, वासनाओं, वृत्तियों तथा संस्कारों की सेना ने मुझे दास बना लिया है। आप ही केवल मुझे इन शत्रुओं से छुटकारा दिलाने में समर्थ हैं"। भक्त जन माता की सहायता तथा शक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं कि मां इन सब विषय वासनाओं का हनन करो क्योंकि भक्त स्वयं इन पर विजय पाने में असफल रहा है। वह मां से शक्ति प्राप्त करता है। दयामयी माँ उसकी सहायता के लिए महाकाली के रूप में सामने आती है और उसे विषयों इन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा मन पर विजय पाने की सामर्थ्य प्रदान करती है।

यही दुर्गा सप्तशति में वर्णित है जिसे हमने नौ दिनों में पढ़ा है। इस में तेरह अध्याय हैं जिनमें बतलाया गया है कि कैसे माँ देवताओं के हितार्थ युद्ध के लिए निकलती है और परम सत्य से विमुख विश्व की सभी आसुरी शक्तियों को किस प्रकार नष्ट करती है। इस काव्य में सत्य से विमुखता को प्रत्येक प्रकार बड़े ही सुचारू ढंग से राक्षस रूप में दर्शाया गया है और इन राक्षसों को इनके स्वभावानुसार भिन्न २ नाम रूप भी दिये गये हैं। इन तेरह अध्यायों में माँ के भिन्न २ रूपों का वर्णन किया गया है जिनको धारण कर

मां विश्व की दानवता, अविद्या और अज्ञान को नष्ट करती है। अन्त में विद्या और ज्ञान को सर्वोपरि विजय होती है तथा जीव सदा-सदा के लिए अज्ञान से मुक्त हो जाता है।

स प्रकार का सोदाहरण विवरण न केवल शाक्त सम्प्रदाय में ही है बल्कि ससार के अन्य धर्मों में भी मिलता है। ईसाइयों में ईश्वर और शैतान है। शैतान विरोधी शक्तियों का प्रतीक है और ईश्वरीय ज्ञान के विपरीत कार्य करता है। जूडा (*Zoroastrian*) धर्म में अरीमैन और अहूरा माज़दा हैं। इस धर्म में अरीमेन उन्हीं विरोधी शक्तियों का प्रतीक है जिन का इसाई धर्म में शैतान। बौद्ध धर्म में "मारा" भी वही है। हिन्दू धर्म में भी विरोधी शक्ति को माया, अज्ञान या आसुरी शक्ति कहा जाता है जो कि ज्ञान-ज्योति तथा आत्मज्ञान के विपरीत है। यह भाव भी वेदान्तिक विचारानुसार ही है कि आत्मा पर विजय प्राप्त की जाती है आत्मज्ञान से। दुर्गासप्तशति का मुख्य भाव भी यही है कि माँ आसुरी वृत्तियों के हनन के लिए काली के रूप में आकर अपनी सन्तान की सहायता करती है।

卐 ॐ 卐

ॐ दुँ दुर्गायै नमः

तृतिय रात्रि

संहार : परिपालन का स्रोत

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

स्म पथ की चरम लक्ष्य है, परब्रह्म का तद्रूप और सृष्टि की उत्पत्ति, स्थि और लय का आदि कारण है।

कल की चर्चा में हम ने मां के दुर्गा और विकट काली के रूप पर विचार केन्द्रित किया था। हम ने माँ काली के उस रूप को भी समझ का प्रयत्न किया जो बाह्य भाव से विध्वंसकारी होने पर भी वास्तव में दया दयामयी है; जो विनाश करती है विकास के लिए, हरण करती है प्रदान लिए। और अपने सत्स्वरूप में ज्योतियों की ज्योति, अनन्त ज्योति स्वरू आत्मा के प्रकाश में अज्ञान के समस्त अंधकार को नष्ट कर देती है।

श्री दुर्गा नाम का साधारण विचार भी जो कि मां के बाह्य विक और विध्वंसक भाव को प्रत्यक्ष करता है विशेष अभिप्राय पूर्ण तथा जान योग्य है। सप्तशति में दुर्गा नाम का प्रथम आवाहन उस श्लोक में किया गय है जहाँ उस की स्तुति आपद्हरणी के भाव से की गई है। मां दुर्गा हं हमारी पाप-ताप से रक्षा करती है। क्योंकि वह अपने भक्तों को भय, शोक तथा भारी संकटों से मुक्त करती है इसलिए इसे दुर्गा कहते हैं। माँ का यह प्रलयंकर चित्रण न केवल इसलिए है कि वह पापविनाशिनी है बल्कि यह सार्वभौमिक अनुभव पर भी आधारित है।

जीवन में मृत्यु निहित है

करना पड़ता है। भूमि के ऊपरी तल को हल द्वारा (तोड़-फोड़ कर) घात पहुचाने के पश्चात् बीज बोया जाता है। वही बीज स्वयं नष्ट हो पौधे के रूप में सामने आता है; और यह क्षय का क्रम अनाज के दाने बनने तक चलता रहता है। भूसा अलग करने के पश्चात् दाने मिलते हैं। भोजन बनाने के लिए कुल्हाड़े से वृक्षों को काट कर ईंधन लाया जाता है और प्रज्वल्लित अग्नि में उस लकड़ी की भी राख बना दी जाती है। इस प्रकार लकड़ी स्वयं जल कर भोजन पकाने के लिए ताप देती है। जब तक भोजन शरीर का चेतनतत्व अथवा बल तत्त्व बनता है तब तक इस का रूप-रंग और रस सब कुछ क्षय होकर परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार यह एक प्रतिरूप उदाहरण है। ऐसे अनेकों उदाहरण संसार में दृष्टिगोचर होते हैं। जिन से पता चलता है कि सम्पूर्ण निर्माण किसी न किसी (बाह्य रूप में) क्षय के अनुक्रम पर आधारित है और अन्ततः इच्छित निर्माण में फलीभूत होता है।

यह उत्पत्ति-लय का क्रम विश्व व्यापी है और इस पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवन का आधारभूत है। यदि मनुष्य के शरीर का मृत्यु के रूप में क्षय न होता तो अर्थशास्त्री विद्वान् मालथस को आवश्यकता ही न होती जो बहुजन-संख्या के कारण पृथ्वी पर स्थान और अन्न के अभाव की कठिन समस्या हमारे सामने रखते। जन साधारण जन-संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि के भयकर परिणाम को नहीं देख पाता परन्तु विश्व व्यापी दृष्टि रखने वाले अर्थशास्त्र विशेषज्ञों और राजनीतिज्ञों के विचार में अधिक जन-संख्या मनुष्य जाति के लिए निरन्तर भय बना हुआ है। यह माँ की क्षय कारिणी शक्ति ही है जो शारीरिक मृत्यु और बाह्य विनाश के द्वारा जन संख्या की वृद्धि में संतुलन रखती हुई मनुष्य जाति की रक्षा करती है। यह सब होते हुए भी जब २ जन संख्या भूमि की उपज की सामर्थ्य से बढ़ जाती है तो अर्थशास्त्र विशेषज्ञों और राजनीतिज्ञों तथा मनुष्य मात्र के लिए बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। तब फिर करुणा निधि मां की शक्ति अति प्रेम और दया से भरपूर होकर क्षय करने के लिए आती है। मनुष्य नहीं जानता कि इस बढ़ती हुई जन

संख्या के भय से क्या बचाव किया जाए परन्तु माँ भूकम्प, युद्ध, अकाल, बाढ़ और महामारी आदि बीमारियों द्वारा स्थिति की रक्षा करती है। यही ऐहिक ढंग है।

इसलिए मनुष्य जीवन में जितने भी निर्माण कार्य होते हैं और अच्छे से अच्छे निर्माण क्रम में भी सांसारिक परिभाषा के अनुसार क्षय का क्रम अवश्य सम्बन्धित होता है। साधारण मनुष्य के लिए क्षय का अर्थ वस्तु के नाश से होता है, यह एक रूप में नाश और दूसरे रूप में निर्माण का क्रम ही माँ की क्षय कारिणी शक्ति दुर्गा या काली का मूलाधार है।

यह क्षय विज्ञान ही अन्ततः सर्वातिशायी सिद्धान्त दृष्टिगोचर होने लगता है। यह अत्युत्तम अवस्था को प्राप्त करने का हेतु है। यह अतिक्रमण स्थूल को नष्ट करके सूक्ष्म को स्थान देता है। प्रकाश पाने के लिए अन्धकार का नाश आवश्यक है। शुद्धता की प्राप्ति के लिए अशिष्ट को छोड़ना ही होगा। पूर्णता आने पर अपूर्णता स्वयमेव नष्ट हो जाती है। यहाँ तक कि बहु संख्या को बनाए रखने के लिए अल्प संख्यक को हटाना पड़ता है।

सर्वोपरि श्रेष्ठता विनाश नहीं

इस प्रकार अघात्य दृष्टि से क्षय का क्रम अन्त में उस उच्चतम अवस्था की ओर ले जाता है जहां उन्नत मार्ग के अतिक्रम में सब नीचताएं नष्ट होकर उच्च अवस्थाओं को स्थान देती जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वातिशायी अवस्था का मार्ग एक अभीष्ट वस्तु है त्याज्य नहीं। जब तक हम अधम की ओर रुचि रखते हुए उसे छोड़ने के लिए उद्यत नहीं होते तब तक महानता की प्राप्ति संभव नहीं। इसी समय दिव्य मातृशक्ति क्षयकारिणी के रूप में सहायता करती है और परम पद की प्राप्ति हमारे लिए सम्भव बनाती है। जैसे कि आज हम विशेष रूप से माँ के दुर्गा या काली भाव का विचार विशेष योग साधन के लिए कर रहे हैं वैसे ही हम देखते हैं कि

किस प्रकार मां साधक के व्यक्तित्व में प्रकट होकर स्पष्ट रूप से साधक के योग साधन में सहायता करती है, इस पर विचार करने से पूर्व यह विचार करना आवश्यक होगा कि योग साधन का वास्तविक अभिप्राय क्या है।

योग साधन एक सुप्रसिद्ध क्रम है, जो कि मनुष्य को अपूर्ण, सीमित, अपवित्र और अधमावस्था से पार करके सर्वोपरि अनन्त और दिव्य अवस्था की ओर ले जाता है। योग साधन और दिव्य जीवन द्वारा उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए मानव के सामने एक विशेष समस्या उठ आती है। मनुष्य का सांसारिक जीवन दिव्य जीवन में एकदम परिवर्तित नहीं हो जाता क्योंकि जब मनुष्य इस ओर अग्रसर होता है तो उसे भौतिक संस्कारों की दृढ़ता का अनुभव अधिक होता है। इस की व्याख्या हिन्दू शास्त्रों में पुन-र्जन्म के सिद्धान्त के रूप में भली प्रकार की गई है, कि जीव अनेकों जड़, चेतन अधम योनियाँ भुक्त कर मानव शरीर को प्राप्त कर पाता है। इस जन्म-मरण के चक्कर में जीव प्रत्येक जन्म के संस्कारों को सूक्ष्म रूप से ग्रहण करता रहता है इसलिए जब जीव मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है तो मानव जाति के गुण, बुद्धि, विचार और विवेक के साथ-साथ पूर्व जन्मों की अमानव और दानव वृत्तियाँ भी उस में रहती हैं। प्रायः देखने में आता है कि पशुओं की वृत्तियों से उपमा दी जाती है, जैसे:—लूमड़ी जैसा चलाक, सिंह जैसा क्रूर, साँप जैसा विष, सूअर जैसा पेटू। इस प्रकार की बुराईयां जिन का मानवता से सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता परन्तु मनुष्य में देखने में आती हैं, भले ही मानव पशु की शारीरिक अवस्था से ऊपर उठ चुका है। इसीलिए मनुष्य को वह पशु कहा जाता है जो कि बुद्धि, विवेक से भी युक्त है। हम देखते हैं कि एक मानव में तीन का समन्वय है। वह पशु, मनुष्य और देवता के मध्य की कुछ वस्तु है। एक ओर तो वह पशु वृत्ति रखता है जब कि दूसरी ओर वह दिव्य गुण भी लिए हुए है। कई बार उस पर पाशविक वृत्तियों, जैसे आलस्य, काम, क्रोध और क्रूरता आदि का प्रभाव देखा गया और कभी-कभी न्याय, सत्य, शुद्धता और दया जैसे दैवी गुणों के कारण वह महान् बन कर हमारे सामने आया।

अन्दर के पशु की बलि दो

साधक का सर्व प्रथम कार्य यह है अपने में से पूर्ण तत्परता और साधना के साथ पाशविक और आसुरी वृत्तियों को निकाल दे। दानवता पूर्ण रूपेण दूर कर मानवता को ग्रहण कर उत्कृष्ट दैवी गुणों की ओर प्रवृत्त हो। मनुष्य के इस मिश्रित स्वभाव के गम्भीर अध्ययन से पता चलता है यह पाशविक वृत्तियां रखते हुए भी बुद्धि, विवेक और विचार के ऐसे दिव्य गुण भी लिए हुए है जो कि मनुष्य जीवन को इह लोक में उच्चतम देवता प्राप्ति के योग्य बनाते हैं। इसी विचार धारा से यह पद्धति बनी कि मनुष्य अपने अन्तर के पशु की बलि दे अथवा नर बलि का भाव अपने अवगुण की बलि देने के लिए हुआ परन्तु बिगड़ते-बिगड़ते यह प्रथा माँ काली के सामने वास्तविक नर बलि और पशु बलि का रूप धारण कर गई। कितनी सुन्दर भावना थी जो कि मनुष्य के आन्तरिक भावना क्रम को दिव्य जीवन में प्रतिबिम्बित करती थी परन्तु बाह्य क्रियात्मक रूप देने पर कितनी बुरी कुप्रथा बन गई कि पशु की बलि वास्तव में दी जाने लगी। पशु बलि का वास्तविक अर्थ है माँ काली की संहारकारिणी शक्ति का आवाहन साधक इसलिए करे कि वह दिव्य शक्ति उस के हृदय में बठे काम क्रोध, लोभ और मोह आदि पशुओं का पूर्ण रूपेण विनाश कर दे। अपनी इस आसुरी वृत्ति की बलि से साधक मां काली या भगवती दुर्गा से आध्यात्म पथ के प्रथम चरण साधन मय जीवन को प्राप्त करता है।

लिए सबसे पहले अपने आपको टटोलना होगा और आत्म निरीक्षण के द्वारा यह पता लगाना होगा कि कौन सा दुर्गुण अधिक प्रभावशाली हो रहा है। इस प्रकार अपने स्वभाव का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना साधक के लिए परमावश्यक है। जब तक साधक यह नहीं जानता कि उसमें अनुचित वृत्ति क्या है तब तक वह साधन में रुकावट बनी रहती है जिस के फलस्वरूप योग पथ पर सुचारू रूप से अग्रसर होना कठिन हो जाता है। अधिक कठिन बात यह है कि तमो गुण के दोष प्रायः अपने अन्तर में स्पष्ट रूप में प्रकट नहीं होते। बाह्य शत्रु से जूझना सहज है क्योंकि उसके बल, पराक्रम के अनुरूप हम भी उस का सामना करने का प्रयत्न करते हैं। मानव के आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, घृणा और निर्दयता आदि के भिन्न-भिन्न अस्पष्ट रूप बहुत से हैं। यह सभी वेश बदल-बदल कर आते रहते हैं जब तक ही जिज्ञासु अन्तर्यामी की दिव्य शक्ति से सहायता की याचना करके इस अहंकृति पूर्ण स्वार्थी स्वभाव को नष्ट नहीं कर देता। दूसरे की आलोचना करना बहुत सहज है क्योंकि उस का बाह्य स्वभाव हम देख सकते हैं परन्तु अपनी आलोचना करना एक कठिन कार्य है क्योंकि मन का स्वभाव बहिर्मुखी है, इसे अन्तरमुखी करना कठिन सा जान पड़ता है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य का अहंकार अपने दोष, अवगुण और अहंकृति को चोट पहुंचाने वाली बातों को पास आने ही नहीं देता। यह नित्य का अनुभव है कि अहंकृति रहित बात दृष्टिगोचर ही नहीं होती। इसलिए अपनी आलोचना करना कठिन कार्य है। यही कारण है कि पूर्व देशों में आध्यात्म पथ के जिज्ञासु को गुरू की शरण लेने को कहा जाता है। जिज्ञासु गुरू की शरण में जाता है, गुरू के साथ रहता है और वह दोष जो उसे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होते गुरू उन दोषों को सहज में हो देख कर जिज्ञासु को विशेष परिस्थिति में रख कर उन को दूर करता है। कभी-कभी साधक को वह कार्य दिया जाता है जहां इन दुर्गुणों को निकाल देना परमावश्यक हो जाता है। तब गुरू द्वारा विशेष नियम बताये जाते हैं और आवश्यकता अनुसार

गुरू चेतावनी भी देते हैं जिससे साधक के गुप्त दोष भी नष्ट हो जाते हैं इस प्रकार बहुत समय तक मां काली की भाँति जिज्ञासु के आरम्भिक काल में आध्यात्म पथ पर कुसंस्कारों की जो भी कठिनाईयां और बाधाएं आती हैं उन सबको गुरु नष्ट कर देते हैं।

साधन में दुर्गा का प्रकाशन

इस प्रकार मां दुर्गा न केवल गुरु द्वारा अपने आप का प्रकाशन करती है बल्कि जिज्ञासु के अन्तर में जिज्ञासा रुप में उद्यत होकर स्वआलोचना और आत्मनिरीक्षण के उस उच्च स्तर पर ले जाती है जहां साधक को अपनी पाशविक वृत्तियों का चित्रण स्पष्ट दिखाई देने लगता है। तब उस साधक को दृढ़ संकल्प हो कर मां से प्रार्थना करनी होती है कि यह सब आसुरी वृत्तियां पूर्ण रुपेण नष्ट हो जाएं। आध्यात्म पथ पर अग्रसर होने के लिए मां का यह रुप आवश्यक है। अपने दोषों से अनभिज्ञ रहना बहुत बड़ी रुकावट है। परन्तु ज्ञान होने पर भी यदि हम अपने दोष दूर न कर पायें तो आध्यात्म पथ पर बढ़ नहीं सकते। इससे आगे का पग यह है कि हम में तीव्र जिज्ञासा हो और अपने अन्तर की सब आसुरी वृत्तियों को नष्ट कर देने के लिए हम दृढ़ संकल्प बनें। एक बार यह निश्चय कर लें तो माँ महा संकल्प के रुप में साधक के हृदय में प्रकट होकर उसे पाशविक वृत्तियों पर विजय प्राप्त करा देती है।

तदुपरान्त माँ क्रिया के रुप में प्रकट होकर साधना शक्ति प्रदान करती है जिसके द्वारा जिज्ञासु उत्तरोत्तर अपने दैनिक जीवन की कार्य विधि, व्यवहार, विचार और भावनाओं में सब प्रकार की विरोधी शक्तियों को पराजित करता बढ़ता चला जाता है। यही मां की प्रगतिशील साधना शक्ति है। इस कार्य को सफलता पूर्वक करने के लिए मां का साधना शक्ति के रुप में आवाहन कर योग साधन करना आवश्यक होता है। यदि जिज्ञासु के अन्दर कुछ कामना पूर्ति की इच्छा हो तो उसे त्याग

और दमन जैसी तपश्चर्या द्वारा इच्छा पूर्ति की लालसा को पूर्ण रूपेण नष्ट करना नितान्त आवश्यक है ।

यह मर्म जान लेना आवश्यक है कि कुछ लालसाओं के परित्याग और दमन से इच्छाएें मन में गुप्त रूप से दब जाती हैं और समय पा कर वाह्य आक्रमणों से भ्रमित हो उभर कर प्रकट हो जाती हैं । यहाँ हमें अपने सामने कुछ महान् तथ्यों को रखना होगा । यह अनुभव सिद्ध है कि कामनाओं से निवृत्ति उन की पूर्ति करने से नहीं मिलती क्योंकि लालसा एक महान् अग्नि के समान है जिस की तृप्ति उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार घी डाल कर अग्नि को शान्त करना । जब हम लालसा को भोग के लिए कुछ देते हैं तो यह अग्नि का भाग्नि और प्रचण्ड होती जाती है । परन्तु जब हम सुख-भोग का परित्याग करते हैं तो लालसा की स्वाभाविक मृत्यु हो जाती है । इसीलिए माँ दुर्गा तपसचर्या के रूप में साधक के हृदय में अवतरित होती है ।

तपसचर्या की कठोरता को सहन करने के लिए तितिक्षा शक्ति का होना आवश्यक है जिस के द्वारा कठिनाई और कष्ट को सहन किया जा सके जो कि साधारण मनुष्य को अनुचित मालूम पड़ता है । तितिक्षा के कई प्रकार हैं जैसे-उपवास, जागरण, स्वेच्छा से कुछ समय तक उन वस्तुओं का परित्याग जो मनको अधिक अच्छी लगती हों जैसे–बिना नमक के खाना, चाय बिना मीठे के, जूते न पहनना आदि । प्रत्येक जिज्ञासु अथवा साधक को अपने आप को आसुरी वृत्तियों और विषय भोग की लालसाओं से बचाने के लिए अपनी बुद्धि द्वारा व्यक्तिगत साधना का विशेष कार्यक्रम बनाना चाहिए । इस सारी साधना के सम्मिलित प्रभाव के रूप में माँ साधक को आसुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के योग्य बना देती है जो कि आध्यात्मिकता की ओर प्रथम पग है ।

इस प्रकार पशु बलि का अभिप्राय महाशक्ति का आवाहन करके अपने दोष, अज्ञान और तामसी वृत्तियों की बलि देना है । यही वास्तविक महत्व है माँ काली की पूजा का साधक के आध्यात्मिक जीवन में ।

माँ दुर्गा की कृपा का साधक के जीवन में कितना प्रभाव है- इस अनुमान करना असम्भव है । यह तो केवल व्यक्तिगत अनुभव सिद्ध तथ्य रूप में ही जाना जा सकता है । हम तो व्यापक रूप में उस तथ्य की चर्चा कर सकते हैं, जैसे कि यह बताया जाता है कि पूर्ण निश्चय से आत्मानुसन्धान, तप, त्याग, सहनशीलता, उपवास, निर्माण, निर्मोह और यो साधन के मार्ग द्वारा मां दुर्गा का दिग्दर्शन किया जा सकता है ।

सप्तशति की शिक्षा

आगे चल कर हमें अहंकृति और भौतिक धारणाओं को छोड़ उच ोटि के दिव्य भाव में स्थित होना होगा । इस क्रम द्वारा साधक के देहभाव नष्ट हो जाने को ही नरबलि की उपमा दी गई है । सप्तशति के तीन भाग । प्रथम में मधु और कैटभ असुर वध, द्वितीय में महिषासुर वध और तीय में शुम्भ-निशुम्भ दो भाईयां और अन्य राक्षस गण का वध साधना के ाक् पृथक् स्तर के प्रतीक हैं । मधु-कैटभ निचले दर्जे की वासनाओं प्रतिनिधि हैं । महिषासुर वध रजोगुण के नाश का बोधक है । पूरे भाग में असुर कुछ सभ्य ढंग से वैभवशाली दैत्यराज के रूप में ते हैं जिन में पराक्रम का अभिमान बहुत है । उस दैत्यराज का अधिपत्य स्त देवता गण पर और अखिल जगत के धन पर है । चौदह भुवन में कुछ भी सुन्दर और बहुमूल्य था उन अजय राक्षस भाईयों के पास है । की राक्षस सेना भी बलवान है । उन के योद्धा का नाम था रक्तबीज जिस तुलना मानव के अहं से की जाती है । अहं के नाश के पश्चात् शुम्भ-ुम्भ का वध विक्षेप और आवरण का प्रतीक है, जिसके द्वारा जीव और । के मध्य में से अन्तिम बाधा भी हट जाती है ।

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्य पदवीं
मुकुन्द ब्रह्मेन्द्र स्फुटमकुट नीराजित पदाम् ॥

॥ ॐ ॥

चतुर्थ रात्रि

लक्ष्मी

परम आश्रय–दायिनी

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्य त्र्यंबके देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥

सम्पूर्ण मंगल कार्यों को मंगलमय करने वाली कल्याण कारिणी, सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाली, शरणदायिनी, त्रिनेत्री गौरी नारायणी, हे माँ, आपको नमस्कार करता हूं।

आज जगज्जननी मां के पूजन का चतुर्थ दिवस है। अब हम मां के द्वितीय विशेष महत्वपूर्ण रूप की पूजा करेंगे जिस में आदि शक्ति सब का पालन–पोषण करती है। आज से तीन दिन के लिए सारे भारतवर्ष में मां की पूजा महालक्ष्मी के रूप में होती है। और अन्तिम तीन दिन महासरस्वती के रूप में और दसवें दिन विजय दशमी।

निराकार का साकार में अवतरण

जब हम नवरात्रों में मां के दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती भाव की पूजा के विधान के बारे में विचार करते हैं तो हमारे सामने एक महान् तथ्य आता है जो वास्तव में एक नियम है। हम जानते हैं कि जब एक नाम रूप रहित अगोचर शक्ति अनेक जीव जगत के रूप में दृष्टिगोचर होती है उस समय सूक्ष्म से स्थूल के अवतरण का एक क्रम आरम्भ हो जाता है। अव्यक्त सम्बन्धित रूप से व्यक्त होने लगता है। अनामी–नामी, अगोचर–गोचर आदि कारण–कार्य के रूप में परिणित होता जान पड़ता है। और अन्त में स्पष्ट स्थूल द्रव्य जगत के रूप में प्रकट हो जाता है। यह एक से अनेक,

अव्यक्त से व्यक्त और आदिकारण से कार्य में परिणित होने के अपसर्ग क्रम का परिणाम स्वरूप है। इस के विपरीत जब साधक उत्सर्ग क्रम द्वारा स्थूल से वापिस अपनी मौलिक सूक्ष्मावस्था में जाने का प्रयत्न करता है तब हम देखते हैं कि यह दिव्य शक्ति अपसर्ग से विपरीत उत्सर्ग की ओर कार्य करने लगती है। ब्रह्मा जी की उत्पत्ति के उपरान्त प्रकृति माया के आधीन सब नाम रूपों की रचना करती है और उन पर त्रिकाल का प्रभाव भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के रूप में होना आरम्भ हो जाता है।

नाम रूप की सत्ता को त्रिकाल के प्रभाव में उत्पत्ति के उपरान्त स्थिति और पालन की आवश्यकता होती है। तब महाशक्ति भगवान विष्णु की सहयोगी बन कर विश्व की स्थिति तथा पालन का कार्य करती है। वही महा लक्ष्मी है। नश्वर, भौतिक नाम रूपों में त्रिकाल के प्रभाव स्वरूप परिवर्तन आवश्यक है। यह लय का कार्य रुद्र का है। इस प्रकार प्रकृति का उत्पत्ति, स्थिति और लय का क्रम भौतिकता की ओर चलता रहता है।

मानव का ईश्वरोन्मुखी उत्सर्ग

श्री मद्भगवद्गीता में कहा है कि दिव्य मार्ग के अनुगामी के लिये प्रत्येक शक्ति का प्रभाव सांसारिक मनुष्य से प्रतिकूल होता है। संसारी के लिए जो दिन है ज्ञानी की वह रात्रि है। जिन बातों के लिए संसारी जागृत रहता है ज्ञानी उनके लिए सोता है, क्योंकि ज्ञानी उनकी मान्यता ही नहीं देता। जिन आध्यात्मिक बातों के लिए संसारी सोया रहता है ज्ञानी उन के लिए सदा जागरूक रहता है। संसारी का ध्यान जिस ओर जाता है योगी उस से विमुख रहता है। योगी समाधी अवस्था में जो अनुभव करता है संसारी का उस ओर ध्यान तक भी नहीं जाता। इस नियम के आधीन निज आत्मन आन्तरिक ज्ञान मार्ग में उन्नति की ओर अग्रसर होता है जो साधक को सर्व-प्रिय होता है।

आरम्भ में साधक मां से जीव पर से भौतिक संस्कारों के कुप्रभाव के नाश की प्रार्थना करता है प्रथम कार्य भौतिक भाव से स्वतन्त्र होना है जिससे भ्रम, बन्धन सब टूट जाते हैं और साधक ससार पर वि य प्राप्त कर शुद्ध, पवित्र, सूक्ष्म आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करता है। इसलिए सर्वप्रथम मातृशक्ति का आवाहन सांसारिक मोह माया के विनाश के लिए किया जाता है। तब योग में प्रगति होती है और आध्यात्मिक जीवन की आधारभूत माँ लक्ष्मी से प्रार्थना की जाती है। इसी प्रकार बाह्य जगत में माँ लक्ष्मी धन पदार्थ के जीवन का आधार है। यह स्मरण रहे कि दिव्य मातृशक्ति के सदा दो रूप हैं— विद्या माया, अविद्या माया। अब साधक विद्या माया मा को पूजा करता है। इस रूप में मां लक्ष्मी साधक का पालन–पोषण और योग साधन में उस की आध्यात्मिक उन्नति की रक्षा करती है।

जब साधक योग साधन के उच्च शिखर पर पहुंच जाता है तब वह माँ से परब्रह्म की आदि शक्ति के रूप में प्रार्थना करता है। वह महा सरस्वती के रूप में ज्ञान दात्री है। वह जीव और ब्रह्म का ऐक्य कर देती है। उसी से अनन्त आत्म शक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है। विद्या मां की पूजा इसलिए की जाती है कि हम स्थूल जगत के आभास से निकल कर परम पवित्र आत्म-ज्ञान की प्राप्ति कर सकें।

अष्ट लक्ष्मी

श्री महा लक्ष्मी का अविद्या माया भाव जो परब्रह्म से निकल कर इस बाह्य जगत की पालना के हेतू व्यापक है हमारी दृष्टि में माँ लक्ष्मी को सफलता और संसार में धन पदार्थ की देवी के रूप में प्रकट करता है। महालक्ष्मी के अष्ट भाव हैं। इस पृथ्वी के ऊपर अन्न सब से बड़ा आधार है। सब का जीवन ही अन्नमय है। इसलिए अन्न की उपज पालन केलिए अत्यावश्यक है। माँ की पूजा धान्य लक्ष्मी के रूप में भी होती है। प्रायः देखने में आता है कि किसान लोग वर्ष में एक दिन इस पूजन के लिए निश्चित करते हैं। जब नई फसल

के समय अनाज खेतों में से बड़ी धूमधाम से घर लाया जाता है तो धान्य लक्ष्मी की पूजा कर उस के अर्पण किया जाता है। इस प्रकार सबकी पालन-कर्त्ता के रूप में मां लक्ष्मी प्रकट है।

माँ लक्ष्मी का दूसरा रूप धन है जिसका मनुष्य के व्यवहारिक जीवन में बड़ा महत्त्व है। धन के बिना उन्नति; सफलता और प्रसन्नता मानव समझता ही नहीं क्योंकि उस का कोई भी साँसारिक काम धन के बिना नहीं हो पाता। इस लिए समाज में सोना, चाँदी और रुपए की पूजा धन लक्ष्मी के रूप में पूजा है।

मां के इन भिन्न-भिन्न भावों की पूजा भारत में भिन्न-भिन्न वर्ग करते हैं। समाज कर्म के आधार पर कई वर्गों में विभाजित है और उन्हें भिन्न-भिन्न ही राष्ट्र हित सौंपे गये हैं। इस प्रकार मां लक्ष्मी की पूजा भी आठ भावों में की जाती है। धान्य लक्ष्मी, धन लक्ष्मी, धैर्य लक्ष्मी, विद्या लक्ष्मी, जय लक्ष्मी, वीर्य लक्ष्मी, गज लक्ष्मी और सौभाग्य लक्ष्मी। धन-धान्य और अपरा विद्या के बिना सभ्य और आनन्दित जीवन सम्भव नहीं। धन-धान्य के प्रयोग केलिए धैर्य का होना परमावश्यक है। वीर्य-शौर्य और गज राजसी सत्ता के प्रतीक हैं। इस प्रकार विजय और सौभाग्य सर्वत्र ही पूज्य हैं। इन अष्ट भावों में श्री लक्ष्मी जी की पूजा होती है. क्षत्रिय विजय खड्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। वैश्य धन प्राप्ति की कामना से वर्ष में एक दिन श्री लक्ष्मी जी की विशेष पूजा करते हैं। वह दिन है दीपावली का दिन बम्बई जैसे समृद्ध नगरों में ऐसे दृश्य देखने में आते है कि चाँदी के सिक्कों का ढेर लगा कर उसी प्रकार श्रद्धा भाव से पूजन किया जाता है जिस प्रकार कोई भक्त मां के विग्रह की पूजा कर रहा हो। शूद्र मां लक्ष्मी की उपासना अन्नदात्री के रूप में करते हैं। ब्राह्मण मां का पूजन विद्यावरदायिनी पुस्तक के रूप में करते हैं। इसी भान्ति आयुधा पूजा के दिन औज़ारों और यंत्रों का पूजन किया जाता है।

सारांश यह कि हिन्दू समाज में मां लक्ष्मी का पूजन जीवन की बहुत सी कार्य विधियों में प्रकट है।

साधक का माँ लक्ष्मी के प्रति भाव

मां लक्ष्मी जगत की पालनहार है। हिन्दू भक्त इस विश्वास से भौतिक जीवन की उन्नति में भी ईश्वरीय शक्ति को ही आधारभूत मान कर अपनी सद्बुद्धि का परिचय देता है। वह भौतिक जीवन को मंगलमय बनाने में दिव्य शक्ति की सत्ता को सर्वभावेन स्वीकार करता है। एक आस्तिक हिन्दू संसार की सब अच्छी वस्तुओं के प्रति शुद्ध भाव रखता है और इस से ही परम ब्रह्म की खोज की जिज्ञासा की प्रतीती उस में होती है। वही हिन्दू जो मां लक्ष्मी का पूजन संसार के धन पदार्थ की प्राप्ति के लिए करता है, उस में दिव्य शक्ति की कृपा को स्वीकार करता है। यह दिव्य भाव कालान्तर में इतना परिपक्व हो जाता है कि यह सारा वैभव त्याज्य और केवल मां की कृपा ही ग्राह्य है। इस प्रकार वह भौतिक वाद से विमुख हो जाता है और त्यागमय जीवन अपना लेता है। क्योंकि वह इस बात को मान लेता है कि जब तक वह अपनी कामना पूर्ति की लालसा बनाए रखेगा माँ केवल सांसारिक धन पदार्थ ही प्रदान करेगा। परन्तु जिस क्षण उसे इन सब पदार्थों की क्षणभंगुरता का बोध हो जाता है और सब कुछ नाशवान दिखाई देने लगता है उसी समय वह इन का त्याग कर विद्या माया मां लक्ष्मी से अनन्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है। तब साधक मां से याचना करता है कि वह मोह, भ्रम और भौतिक प्रलोभनों के बन्धनों से मुक्त कर दे और वह अपने धन पदार्थ तथा सुख का जो मायावी आवरण है उसे भी दूर कर दे। इस प्रकार साधक स्वेच्छा से अविद्या से विमुख हो जाता है। यही सांसारिक मनुष्य और जिज्ञासु में अन्तर है। यहीं पर माँ लक्ष्मी की साधक और असाधक द्वारा पूजा के दो भावों के अन्तर और महत्त्व का निर्णय होता है। दोनों ही मां लक्ष्मी की पूजा करते हैं परन्तु एक भौतिक सुख मांगता है तो दूसरा धन पदार्थ के सुख के बन्धन से मुक्ति की याचना करता है। वाह्य रूप से दोनों एक ही प्रकार से पूजन करते जान पड़ते है। एक बार विद्या और अविद्या का अन्तर जान लेने से, एक ही देवी की पूजा के दो भिन्न-भिन्न

अर्थ स्पष्ट हो जायेंगे कि एक भाव में तो सुख भोग की लालसा है जब कि दूसरे भाव में है अनन्त की खोज।

दोनों भावों में वही एक दिव्य माँ है और उसी माँ लक्ष्मी की मूर्ति सर्वदा मंगलकारिणी तथा सुखदायिनी है। उस के सुन्दर वस्त्राभूषण हैं। शक्ति और महानता का प्रतीक गज उन के संग है। कमलासन स्थित माँ के हाथ में दो खिले कमल के फूल पकड़े हुए हैं। इन सब के महत्त्व पर विचार किया जाये तो कमल प्रतीक हैं पूर्णता के और उच्चकोटि की उन्नति, वैभव तथा ज्ञान का बोधक है गज।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः

पंचम रात्रि

सफलता का मार्ग

सृष्टि स्थिति विनाशानां शक्ति भूते सनातनी।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते ॥

माँ दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती को बार बार नमस्कार है। उस की कृपा हम सब पर बनी रहे। वही हमारे जीवन का आधारभूत है, वही आत्म तत्त्व है, वही हमारा ध्येय, योग साधन की अन्तिम सफलता, ज्ञान और परमानन्द है।

मां लक्ष्मी के रूप में अनन्त शक्ति है जिस के द्वारा ही केवल यह सारा जीवन सम्भव है। यदि माँ लक्ष्मी की कृपा न हो तो समस्त जीवन दुःख-दर्द के अतिरिक्त और कुछ भी न हो। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीव माँ दुर्गा द्वारा आयोजित क्षति और अश्रुपात ही देखता रहता है। वास्तव में इस संसार में जीवन का अर्थ दुःख, दर्द और मृत्यु ही है। केवल माँ लक्ष्मी ही अपनी ज्योति, शक्ति, प्रेम, सफलता और सुखमयी कृपा से जीवन को सहने तथा रहने योग्य बना देती है। मां लक्ष्मी कल्याणी, मंगलमयी, सौभाग्यवती के रूप से व्याप्त है। व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन में प्रसन्नवदना ज्योति स्वरूपा जीवन को सुखमय बनाती है। इस प्रकार और मां लक्ष्मी ममता बनाए रखती हैं कि जीव संसार की क्षति और क्षणभंगुरता को भूला रहे और संसार के भोगों का उपयोग कर आनन्द ले सके।

राष्ट्रीय महत्त्व के चिन्ह

राष्ट्रीय और पारिवारिक जीवन में माँ लक्ष्मी के प्रभाव के प्रति जागरूक होना बड़ा रोचक होगा जबकि मां की सत्ता सुखमय जीवन में भासित होगी।

ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः

पंचम रात्रि

सफलता का मार्ग

सृष्टि स्थिति विनाशानां शक्ति भूते सनातनी ।।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमो ऽस्तुते ।।

माँ दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती को बार बार नमस्कार हैं। उस की कृपा हम सब पर बनी रहें। वही हमारे जीवन का आधारभूत है, वही आत्म तत्त्व है, वही हमारा ध्येय, योग साधन की अन्तिम सफलता, ज्ञान और परमानन्द है।

मां लक्ष्मी के रूप में अनन्त शक्ति है जिस के द्वारा ही केवल यह सारा जीवन सम्भव है। यदि माँ लक्ष्मी की कृपा न हो तो समस्त जीवन दुःख-दर्द के अतिरिक्त और कुछ भी न हो। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीव माँ दुर्गा द्वारा आयोजित क्षति और अश्रु पात ही देखता रहता है। वास्तव में इस संसार में जीवन का अर्थ दुःख, दर्द और मृत्यु ही है। केवल माँ लक्ष्मी ही अपनी ज्योति, शक्ति, प्रेम, सफलता और सुखमयी कृपा से जीवन को सहने तथा रहने योग्य बना देती है। मां लक्ष्मी कल्याणी, मंगलमयी, सौभाग्यवती के रूप में व्याप्त है। व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन में प्रसन्नवदना ज्योति स्वरूपा जीवन को सुखमय बनाती हैं। इस प्रकार और माँ लक्ष्मी समता बनाए रखती हैं कि जीव संसार की क्षति और क्षणभंगुरता को भूला रहे और संसार के भोगों का उपयोग कर आनन्द ले सके।

राष्ट्रीय महत्त्व के चिन्ह

राष्ट्रीय और पारिवारिक जीवन में माँ लक्ष्मी के प्रभाव के प्रति जागरूक होना बड़ा रोचक होगा जबकि मां की सत्ता सुखमय जीवन में भासित होगी।

व्यापक रूप में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी माँ लक्ष्मी, माँ दुर्गा के भयंकर प्रहारों को रोक कर जीवन को सम्भव बना देती है। हम देखते हैं कि मां दुर्गा किस प्रकार विनाश और क्षय के कार्य आरम्भ कर देती है परन्तु मां लक्ष्मी की कृपा से सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन अस्त-व्यस्त होने से बच जाता है। जब-जब पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए माँ दुर्गा युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष, बाढ़, अग्नि प्रकोप और भूकम्प आदि लाती है तब तब मां लक्ष्मी सम संतुलनार्थ शक्ति, स्वास्थ्य, समृद्धि, समवृष्टि द्वारा राष्ट्रीय वैभव प्रदान करती है। विष्णु शक्ति के रूप में हस्पताल, फायरब्रिगेड और अन्य सार्वजनिक हितकर संस्थाओं का निर्माण करता है। इसलिए राजनीतिज्ञों, शासकों और नेताओं के लिए माँ लक्ष्मी का यह स्वरूप सामाजिक उन्नति के रूप में सामने आता है।

जहां इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता वहां जातीय उन्नति रुक जाती है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने शासकों के लिए यह अनिवार्य रक्खा कि वह विष्णु शक्ति मां लक्ष्मी से उसकी कृपा केलिए सदैव प्रार्थी बने रहें और उस के अनुरूप मन्दिर, विद्यालय, उद्यान और सार्वजनिक हित के अन्य संस्थान का निर्माण करें। परिणाम स्वरूप इस धर्मभूमि भारतवर्ष में प्रत्येक नगर में मन्दिर देखते हैं। छोटे से छोटे ग्राम में भी भगवान की मूर्ति स्थापित की हुई मिलती है, किसी मन्दिर, झोंपड़ी या वृक्ष के नीचे ही। जिस ग्राम में पूजा का कोई स्थान नहीं होता वहां कोई भी आस्तिक व्यक्ति नहीं जाता। यह कहावत भी है कि वहां लक्ष्मी का निवास न होने के कारण वह स्थान त्याज्य है। जिस स्थान पर पानी का समुचित प्रबन्ध नहीं होता वहां भी लक्ष्मी मां का निवास नहीं माना जाता और महात्मा लोग भी वहां पदार्पण नहीं करते। इसीलिए प्रायः धनाढ्य लोग कूप, बावली और मन्दिर निर्माण करते हैं। इस प्रकार हमारे ऋषियों मुनियों ने प्रत्येक नागरिक के लिए सामाजिक और राष्ट्रीय ऋण से उऋण होने के लिए नए मन्दिर बनवाना, पुराने तथा गिरे हुए मन्दिरों की मरम्मत करवाना, यात्रियों के लिये धर्मशालाएं बनवाना, साधू-महात्माओं को भोजन करवाना और निशुल्क विद्या दान करना विशेष धार्मिक कार्य बतलाये हैं और यहाँ लक्ष्मी का निवास माना गया है।

राजनीतिज्ञों का सर्व प्रथम कर्त्तव्य

सब देशों के नेताओं और समाज सुधारकों के लिए यही उचित कर्त्तव्य है कि मां लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त सुख-वैभव को सम्भाल कर रक्खें और सर्वजनिक हितार्थ इन गुणों का प्रसार करें। जब तक मनुष्य संसार से आसक्त रहता है तब तक इन गुणों की रक्षा भी आवश्यक हो जाती है। हिन्दू धर्म के वैराग्य औद वेदान्त के सिद्धान्तो को भली प्रकार न समझने के कारण तथा इन के अधूरे ज्ञान के झूठे अभिमान के कारण शताब्दियों तक भारत वासी सांसारिक सुख की वास्तविकता से दूर रहे और वैराग्य के कच्चे ज्ञान में पड़ कर महा लक्ष्मी की कृपा से प्राप्त सुख, सभृति को माया जाल कह कर छोड़ दिया। अपना झुकाव तथा कथित परलोक सुधार के उच्चकोटि के विचारों की ओर करते हुए वाह्य जगत की वास्तविकता को भूल गए, हिन्दू जाति को माँ लक्ष्मी की इस अवहेलना का बड़ा दाम चुकाना पड़ा, मां लक्ष्मी के सद्गुणों, स्वतन्त्रता, समृद्धि और राष्ट्रीय स्वाभिमान आदि का निवास ही भारत वर्ष से उठ गया। श्री लक्ष्मी जी ने हिन्दू जाति में निवास ही छोड़ दिया जब कि गलत विचारधाराओं के अन्तर्ग लोग माँ लक्ष्मी की पूजा का त्याग कर आदर्शवाद की झूठी महानताओं का ओर अधिक प्रवृत्त हो गए। इस लिए अविद्या और अज्ञान का प्रभाव बढ़ गया। शरीर तथा वाह्य जगत की भावनाओं और कामनाओं से आवद्ध होते हुए भी उन्हों ने वाह्य जगत के सुख-वभव से मुख मोड़ इन सब को नश्वर कह तमोगुणी और आलसा बन गए। जिसके परिणाम स्वरूप दो शताब्दियों तक उन भारतीयों को परतन्त्र रहना पड़ा जो क्रियात्मक रूप से श्री लक्ष्मी जी के वास्तविक पुजारी थे। अंग्रेजों ने मां लक्ष्मी को इतना संतुष्ट किया कि भारत वर्ष में जो कुछ भी धन सम्पति थी वह पश्चिम की ओर ले गए। अंग्रेज भौतिकवादी होते हुए भी श्री लक्ष्मी जी के पुजारी थे। जब भारतीय महात्माओं तथा विद्वानों ने अनुभव किया कि भारत की अवनति का कारण मां लक्ष्मी की अवहेलना और तमोगुण है तब उन्हों ने हिन्दू जाति में रजोगुणी विचार धारा का प्रचार

किया। इन महापुरुषों ने जागृति का डंका बजाते हुए कहा कि आलस और तमोगुण की निद्रा से जागो, जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं को जानते हुए निष्काम सेवा के क्षेत्र में अग्रसर हो जाओ। इस प्रकार पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ। सब अनुचितभावनाएं समाप्त होने लगीं। वास्तविक ज्ञान का बोध होने लगा कि जब तक आध्यात्मिक साधन द्वारा ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या का अनुभव नहीं होता और बाह्य जगत के आभास से ऊपर नहीं उठ जाते उस समय तक माँ लक्ष्मी की क्रियात्मक पूजा करनी ही होगी सुखसमृद्धि के लिए। आध्यात्मिक उन्नति का झूठा अभिमान हो जाने के कारण साधक उन वस्तुओं का त्याग कर बैठता है जो त्याज्य नहीं होतीं प्रारम्भिक अवस्था में। कालान्तर में उन्नति के मार्ग में धीरे धीरे उन का त्याग सहायक भी होता है ॥

इस प्रकार प्रमाद और आलस्य को त्याग और वैराग्य समझने की गलत भावना स्पष्टीकरण होने से समाप्त हो गई। अब हम क्रियात्मक रजोगुण का अनुभव करते हैं जिस के द्वारा हिन्दू जाति जागृत हो रही है। यह शुभ लक्षण है। यदि अविद्या को पुनः घर न करने दिया गया तो आध्यात्मिकता के परम लक्ष्य को अवश्य प्राप्त किया जा सकता है ॥

कड़ी चेतावनी

साधक अन्त में भले ही इस बात का अनुभव कर ले कि वह शरीर नहीं बल्कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध आत्मा है परन्तु यदि वह आरम्भ में ही अज्ञानतावश इस आधार पर साधन करे तो उसे हताश होना पड़ता है। क्योंकि बाह्य जगत के नियम इतने कड़े हैं कि उन का उल्लंघन करते ही मूल्य चुकाना पड़ता है। जैसे कोई साधक एकदम वेदान्तिक भावनाओं की उड़ान भरना आरम्भ कर दे और अपने शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देता हुआ यह समझे कि मुझे आत्मज्ञान हो गया है तो उसे बहुत देर के पश्चात् अपनी गलती का अनुभव होगा कि योग, धर्म और सेवा आदि के साधन द्वारा शरीर इतना जर्जर हो चुका है कि पुनः आरोग्य होने

के योग्य ही नहीं रहा और उसकी साधना में बाधा आ भी चुकी है। ऐसी अवस्था में प्रभु उस की रक्षा करते हैं और वह अपने आप को ठीक मार्ग पर ले आता है।

जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में शरीर की ओर से असावधान रहने से कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन में भी अवनति और तामसिकता से बचाव करना परमावश्यक हो जाता है। भारतवर्ष ने यह शिक्षा बड़े कटु अनुभव के पश्चात ली है। अब समाज का झुकाव क्रियात्मक रूप से धर्म पर आधारित हो रहा है। अनेकों सामाजिक एवं राजनैतिक नेता निष्कामता और निर्ममता के ज्वलंत उदाहरण हैं। श्री गुरुदेव जी महाराज जैसे महात्माओं ने तो देश के अन्दर एक नई क्रिया शक्ति की लहर उत्पन्न कर दी है जो कि हमें मां सरस्वती के प्रदेश की ओर ले जायेगी जहां सुख, शान्ति, विद्या और आध्यात्मिक उत्थान सम्भव होगा। श्री लक्ष्मी जी के निवास के बिना माँ सरस्वती का निवास होना असम्भव है और न ही ऐसे ज्ञान प्राप्ति हो सकती है क्योंकि यह कहा जाता है कि धर्म का प्रचार भूखे और नग्न प्राणियों में नहीं किया जा सकता।

किया। इन महापुरुषों ने जागृति का डंका बजाते हुए कहा कि आलस और तमोगुण की निद्रा से जागो, जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं को जानते हुए निष्काम सेवा के क्षेत्र में अग्रसर हो जाओ। इस प्रकार पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ। सब अनुचितभावनाएं समाप्त होने लगीं। वास्तविक ज्ञान का बोध होने लगा कि जब तक आध्यात्मिक साधन द्वारा ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या का अनुभव नहीं होता और बाह्य जगत के आभास से उपर नहीं उठ जाते उस समय तक माँ लक्ष्मी की क्रियात्मक पूजा करनी ही होगी सुख समृद्धि के लिए। आध्यात्मिक उन्नति का झूठा अभिमान हो जाने के कारण साधक उन वस्तुओं का त्याग कर बैठता है जो त्याज्य नहीं होतीं प्रारम्भिक अवस्था में। कालान्तर में उन्नति के मार्ग में धीरे धीरे उन का त्याग सहायक भी होता है ॥

इस प्रकार प्रमाद और आलस्य को त्याग और वैराग्य समझने की गलत भावना स्पष्टीकरण होने से समाप्त हो गई। अब हम क्रियात्मक रजोगुण का अनुभव करते हैं जिस के द्वारा हिन्दू जाति जागृत हो रही है। यह शुभ लक्षण है। यदि अविद्या को पुनः घर न करने दिया गया तो आध्यात्मिकता के परम लक्ष्य को अवश्य प्राप्त किया जा सकता है ॥

कड़ी चेतावनी

साधक अन्त में भले ही इस बात का अनुभव कर ले कि वह शरीर नहीं बल्कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध आत्मा है परन्तु यदि वह आरम्भ में ही अज्ञानता वश इस आधार पर साधन करे तो उसे हताश होना पड़ता है। क्योंकि बाह्य जगत के नियम इतने कड़े हैं कि उन का उल्लंघन करते ही मूल्य चुकाना पड़ता है। जैसे कोई साधक एकदम वेदान्तिक भावनाओं की उड़ान भरना आरम्भ कर दे और अपने शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देता हुआ यह समझे कि मुझे आत्मज्ञान हो गया है तो उसे बहुत देर के पश्चात् अपनी गलती का अनुभव होगा कि योग, धर्म और सेवा आदि के साधन द्वारा शरीर इतना जर्जर हो चुका है कि पुनः आरोग्य होने

के योग्य ही नहीं रहा और उसकी साधना में बाधा आ भी चुकी है। ऐसी अवस्था में प्रभु उस की रक्षा करते है और वह अपने आप को ठीक मार्ग पर ले आता है।

जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में शरीर की ओर से असावधान रहने से कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन में भी अवनति और तामसिकता से बचाव करना परमावश्यक हो जाता है। भारतवर्ष ने यह शिक्षा बड़े कटु अनुभव के पश्चात् ली है। अब समाज का झुकाव क्रियात्मक रूप से धर्म पर आधारित हो रहा है। अनेकों सामाजिक एवं राजनैतिक नेता निष्कामता और निर्ममता के ज्वलंत उदाहरण हैं। श्री गुरूदेव जी महाराज जैसे महात्माओं ने तो देश के अन्दर एक नई क्रिया शक्ति की लहर उत्पन्न कर दी है जो कि हमें मां सरस्वती के प्रदेश की ओर ले जायेगा जहां सुख, शान्ति, विद्या और आध्यात्मिक उत्थान सम्भव होगा। श्री लक्ष्मी जी के निवास के बिना माँ सरस्वती का निवास होना असम्भव है और न ही ऐसे ज्ञान प्राप्ति हो सकती है क्योंकि यह कहा जाता है कि धर्म का प्रचार भूखे और नग्न प्राणियों में नहीं किया जा सकता।

इसलिए हमें सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की इस समस्या का समाधान वास्तविकता के अनुरूप ही करना होगा। हमें माँ लक्ष्मी द्वारा प्राप्य सर्व सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य, विद्या और उन्नति आदि गुणों का प्रचार करना होगा। यह भावना देश में है तो परन्तु शिथिलकाय। क्योंकि लक्ष्मी का निवास न होने के कारण देश में भूख और निर्धनता अधिक मात्रा में है। भूख से पीड़ित मानव आदर्शवाद की बातें सोच ही नहीं सकता। यही सर्वविदित तथा मां लक्ष्मी का महत्त्व प्रत्येक जाति में स्थापित करता है। मां लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त सुख-समृद्धि का विवेक और वैराग्य द्वारा सदुपयोग ही माँ सरस्वती के ज्ञानमय प्रदेश की ओर लेजाता है जो भारतीय संस्कृति का अन्तिम लक्ष्य है।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देविविश्वम् ॥

ॐ महालक्ष्मयै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदय।

षष्ठी रात्री

मंगलकारिणी, गृहलक्ष्मी और मनसा देवी

शरणागत दीनार्त्त परित्राण परायणे
सर्वस्यार्त्तिहरे देवी नारायणि नमोऽस्तुते।

शरणागतों, दीनदुखियों की त्राता सब विपदाओं को हर लेने वाली देवी विष्णुपत्नी माँ नारायणि को अनेक बार नमस्कार है। जो योग साधन ...ति है और हमें शुद्ध, पवित्र ज्ञान प्रदान करती है उसे बार बार नमस्कार है।

आज माँ लक्ष्मी की पूजा का तृतिय दिवस एवं नवरात्र पूजन का छठा दिन है। सौभाग्यवश आज यह सुअवसर मिलता है। परिवारिक और मानसिक क्षेत्र में मां लक्ष्मी साधक और मुमुक्षु दोनों में दैवी सम्पद् का महत्त्वपूर्ण विकास करती है। मानसिक और पारिवारिक क्षेत्रों में मां के भिन्न- भिन्न प्रभाव का विशेष महत्त्व है। इन में मां का उपस्तिथि और अनुपस्तिथि का अनुभव स्वतः हो जाता है। अभाव का अनुभव होते ही हम उन गुणों का रक्षा का प्रयत्न करने लगते हैं और माँ का निवास होने के कारण अभाव समाप्त हो जाता है।

भारत का सर्वश्रेष्ठ स्तीत्व

भारयवर्ष की पुण्य भूमि पर श्री लक्ष्मी जी का पारिवारिक क्षेत्र में विशेष स्थान है। गृह श्री लक्ष्मी जी का निवास स्थान माना जाता है। वह पूजनीय हैं गृहणी के रूप में इसलिए उसे गृहलक्ष्मी भी कहा जाता है जो कि

सारे परिवार की मंगलकारिणी और घर की सुख-सम्पदा की रक्षक होती है। गृहणी को लक्ष्मी का ही स्वरूप माना जाता है। भारतीय संस्कृति का यह विशेष प्रतीक है जो कि पश्चिमी देशों में नहीं मिलता। पाश्चात्य स्त्री पत्नि के रूप में प्रत्येक क्षेत्र में न केवल बराबर की हिस्सेदार हैं बल्कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी सुरक्षित रखती है। परन्तु हिन्दू जाति में मातृ भाव की भावना अधिक काम करती है। इस पुण्य भूमि पर जन्म लेने का यह सौभाग्य है कि हम इस भावना के अन्तर्गत ईश्वर का सा त्कार माँ के रूप में कर सकते हैं। मातृभाव चित्त शुद्धि और ज्यो िमय ज्ञान शक्ति की प्राप्ति का विशेष पाधन है।

हिन्दू जाति का प्रत्येक घर मंगलमयी श्री लक्ष्मी जा का निवास स्थान माना जाता है और उस गृह-मन्दिर में श्री लक्ष्मी जी गृहलक्ष्मी के रूप में विराजमान रहती हैं। माँ की महानता, शक्ति एवं तेज गृहलक्ष्मी के सतीत्व, पवित्रता तथा धर्म के रूप में प्रकाशित होती है। यह शक्ति संसार में सर्वोपरि है। स्त्री के सभी धर्म पतिव्रत धर्म में ही हैं। परिवार में गृहलक्ष्मी के लिए उस के पति देव का वही स्थान है जो कि योग साधन में साधक के लिए गुरू देव का। जैसे साधक गुरू और गोबिन्द में कोई अन्तर न मानता हुआ यही समझता है कि गुरू ही विष्णु, गुरु ही ब्रह्मा, गुरू ही शिव, गुरू ही शक्ति, गुरू ही निर्गुण और गुरू ही सनातन है। इसी प्रकार पतिदेव पत्नि के लिए है। पतिव्रत धर्म स्त्री के लिए सब से अधिक बहुमूल्य है जिस के द्वारा वह न केवल एक आदर्श नारी ही बनती है बल्कि साक्षात् देवी बन जाती है क्यों कि सतीत्व मां लक्ष्मी का अपना दिव्य गुण है और इस का बाह्य रूप लज्जा है जो इस की शोभा को और भी बढ़ाती है। इसीलिए हिन्दू नारी का लज्जा आभूषण है। न तो वह अपने आप का प्रदर्शन करना चाहती है और न ही दूसरों को देखने की इच्छुक होती है। आज के युग में स्वप्रदर्शन की लालसा बहुत बढ़ती जा रही है। स्त्रियां दूसरों को आकर्षित करने की कामना से रंग-बिरंगे भड़कीले वस्त्रों तथा अन्य निराले साधनों की खोज में अपनी बुद्धि को

लगाए रखती है और सदा इस अन्धकारमय विचार में बहती रहती है कि दूसरे हमारी ओर आकर्षित हों। लज्जा जैसे सद्गुण से इस भावना का सीधा विरोध है। यदि लज्जा को छोड़ दूसरों को आकर्षित करने की भावना को स्थान दे दिया जाए तो वहाँ श्री लक्ष्मी जी के स्थान पर कुलक्ष्मी का निवास होगा। इसी भावना के अन्तर्गत हिन्दू सभ्यता में लज्जा के गुण को सर्वोपरि स्थान दिया गया है और मां लक्ष्मी ऐसी सती, साध्वी स्त्रियों द्वारा ही प्रकट होती हैं।

श्री लक्ष्मी जी का निवास गृहलक्ष्मी के सभ्य व्यवहार, मीठे बोल और सुन्दर आभा में होता है। हिन्दू जाति की गृहलक्ष्मी के पवित्र मुख से कभी भी किसी कटु वचन की आशा नहीं की जा सकती। यह गुण गृहलक्ष्मी के आदर्श का अभिन्न अंग है। कभी भी कटु वचन न बोलना श्री लक्ष्मी जी की मान मर्यादा और पूजा का एक ढंग है और गृहस्थ का वास्तविक सुख और शान्ति इसी में है।

एक और लोकाचार है जिस को भली प्रकार समझा नहीं जाता कि गृहलक्ष्मी की शोभा मंगल सूत्र धारण करने के अतिरिक्त दो अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं में भी है, वे हैं पुष्प और तिलक धारण करना। हिन्दू नारी को बिना तिलक के कभी नहीं रहना चाहिए। मस्तक पर तिलक धारण करने का विशेष महत्त्व है। इसका महत्त्व दोनों प्रकार से अत्याधिक है। व्यक्तिगत रूप से उस स्त्री के लिए है जो तिलक धारण करती है और उन लोगों के लिए जिन के सम्पर्क में व्यवहार वश उसे आना पड़ता है। इसी प्रकार पुष्प धारण करना भी। पुष्प में भी श्री लक्ष्मी जी का निवास माना जाता है, इसीलिए पुष्प धारण किये जाते हैं। परन्तु साथ-साथ हमें माँ लक्ष्मी की विद्याशक्ति और अविद्या शक्ति के दोनों रूप भुला देने नहीं होंगे। इस अविद्या भाव की पूजा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए और माँ से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारी रक्षा करे अपने इस खेल में और विद्या शक्ति प्रदान करे।

गृहलक्ष्मी स्वयं श्री लक्ष्मी जी का स्वरूप होने के नाते ईश्वर की पूजा

सर्वदा पतिदेव के रूप में करतीं हैं। उन पर सर्वस्व न्योछावर करते हुए निरन्तर सेवा में तत्पर रहती हैं। कारण यह कि श्री लक्ष्मी जी स्वयं भी पतिसेवा का सर्वोच्च उदाहरण हैं। वैष्णव श्री लक्ष्मी जी को वैकुण्ठ पति भगवान विष्णु जी की सनातन सेविका मानते हैं। वह अनादि काल से भगवान विष्णु जी के चरणों की निरन्तर सेवा करती हैं। श्री लक्ष्मी जी का यह गुण अति महत्त्वपूर्ण है और प्रत्येक आदर्श हिन्दू नारी के लिए क्रियात्मक रुप से ग्राह्य है।

श्री लक्ष्मी जी का गृह में निवास

गृहलक्ष्मी के व्यक्तित्व से भिन्न घर की स्वच्छता आदि की ओर चलें तो हम देखते हैं कि स्वच्छता में ही श्री लक्ष्मी जी का निवास है। कूड़े-कर्कट में कुलक्ष्मी वास करती है। इसे दक्षिण भारत में दरिद्र कहा जाता है।

साँयकाल होते ही प्रत्येक हिन्दू घर में दीपक जला दिया जाता है। उसे प्रणाम किया जाता है। इस प्रकार अन्धकार आने से पूर्व ही प्रकाश होजाता है। यह प्रथा प्रत्येक हिन्दू घर में है क्योंकि प्रकाश में श्री लक्ष्मी जी का निवास माना जाता है।

इसके उपरान्त देवपूजा है। जहाँ देव पूजा नहीं होती वहां श्री लक्ष्मी जी का निवास नहीं होता। वह अविद्या शक्ति धन लक्ष्मी के रूप में भले ही एकत्रित हो जाए परन्तु उस स्थान की उन्नति कभी नहीं होगी। अन्ततोगत्वा उस स्थान पर दुःख—शोक आदि ही व्याप्त होंगे। यह एक महत्त्वपूर्ण विचार है कि जिस का प्रभाव भारतवर्ष की पुण्य भूमि पर है। पाश्चात्य जातियों को भी इस ओर ध्यान देना होगा यदि वह पारिवारिक सुख चाहते हैं तो। पर्व के दिन देव पूजा परिवार में उत्सव के रूप में अत्यावश्यक है। यदि जन्माष्टमी और रामनवमी जैसे पर्व जो इस पुण्य भूमि पर मनाए जाते हैं छोड़ दिये जायें तो हम कह सकते हैं कि यह घर शुभ नहीं।

दान भी गृहस्थाश्रम में श्री लक्ष्मी जी के निवास का चिन्ह है। गृहस्थी

को ही यह सुअवसर प्राप्त है कि वह अपने धन-पदार्थ में से अन्य तीन आश्रम वालों को दान दे सकता है। विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी को दान देना विशेष सौभाग्य है और यह सौभाग्य भी मां लक्ष्मी की विशेष कृपा से प्राप्त होता है क्योंकि दान के द्वारा ही माँ धर्म की रक्षा करती है इस प्रकार अन्य आश्रमों के धर्म का पालन सम्भव होता है।

अतिथि सत्कार तो गृहस्थाश्रम का विशेष धर्म है। जहाँ अतिथि सत्कार नहीं होता वहां भी श्री लक्ष्मी जा निवास नहीं करतीं। अतिथि सत्कार, उदारता और दान गृहस्थ धर्म के आवश्यक अंग हैं जो कि श्री लक्ष्मी जी की कृपा दृष्टि के बोधक हैं।

भारतवर्ष में विशेषकर हिन्दू गृह में श्री लक्ष्मी जी के दो चिन्ह मिलते हैं। एक है श्री तुलसी जी का पौधा जो कि श्री लक्ष्मी जी का स्वरूप और भगवान विष्णु जी की विभूति है। महाराष्ट्र के लोग इस पर विशेष श्रद्धा रखते हैं। यह लोग चाहे लखपति हों या गरीब, चाहे नीचे की मंजिल में रहते हों या ऊपर की, वह कहीं भी रहें, वातावरण कितना भी भौतिकवादी क्यों न हो फिर भी इन के घरों में तुलसी जी का पौधा अवश्य मिलेगा। गृह प्रवेश करते ही श्री तुलसी जी के दर्शन होते हैं। जहां मां की इस प्रकार विशेष पूजा होती है उस परिवार पर मां की कृपा भी विशेष ही होती है। महाराष्ट्र की कोई भी गृहलक्ष्मी श्री तुलसी जी का पूजन किए बिना जलपान नहीं करती।

दूसरा चिन्ह है गऊ माता जिस की उपस्थिति दुर्भाग्यवश हिन्दू परिवार में कम होती जा रही है। कुछ समय पूर्व यह प्रथा थी कि घर में प्रति दिन गौ पूजन होता था। आस्तिक स्त्रियाँ गौ पूजन किए बिना भोजन नहीं करती थीं। बड़े-बड़े नगरों में तो गौ माता के दर्शन भी दुर्लभ हो गए हैं और दूध भी बन्द बोतलों में मिलता है। गौ पालन अतिरिक्त ग्रामों के समाप्त सा हो चुका है। आज की गृहलक्ष्मी के लिए नित्य गौ पूजा सम्भव भी नहीं रही परन्तु प्रायश्चित के रूप में आस्तिक स्त्रियों को वर्ष में एक-दो बार पर्व के दिन गऊ

पूजा अवश्य करनी चाहिए। गोपाष्टमी का पर्व इस पूजन के लिए विशेष रूप से आता है। इस दिन किसी न किसी ढंग से पूजा की ही जाती है। गौ पूजा के लिए अवसर अवश्य निकालना चाहिए क्योंकि हिन्दू धर्म के अनुसार गऊ माता पूजनीय है। गो धन पूज्य और पवित्र धन है जिस में माँ लक्ष्मी का निवास है।

साधक का आध्यात्मिक धन

अब हम मोक्षदायिनी माँ लक्ष्मी के गुणों की चर्चा करेंगे। अधिकतर तो श्री लक्ष्मी जी रजोगुण प्रधान हैं क्योंकि क्रिया शक्ति के संचालन के लिए रजोगुण आवश्यक है। परन्तु यह उस का वाह्य रूप है। अन्तर भाव से वह शुद्ध निर्मल सतोगुणी है क्योंकि भगवान विष्णु जी सतोगुणी हैं। माँ अपने तीसरे रूप में श्री सरस्वती भी हैं। जब हम सतोगुण की ओर चलते हैं तो माँ लक्ष्मी मोक्षलक्ष्मी के रूप में साधक पर कृपा करती हैं। श्री गीता जी के साहलवें अध्याय में भी वही दैवी सम्पद् बतलाई गई है जहां कि मां का निवास होता है। अभय, पवित्रता, दृढ़ता, योग, दान, इन्द्रिय निग्रह, बलिदान, शास्त्र अध्ययन, तपस्चर्या, ज्ञान, स्पष्टवादिता, अहिंसा, सत्य; अक्रोध; त्याग, शान्ति, दम्भहीनता, दया, सौम्यता और निरविक्षेपता आदि सभी सद्गुण विशेष रूप से ग्राह्य हैं। अविद्या माया श्री लक्ष्मी धन, पदार्थ, लोभ, संग्रह अभिमान, दम्भ और विक्षेप के रूप में प्रकट होती है। इसी महत्त्व के कारण भगवान श्री कृष्ण जी ने दैवी सम्पद् आध्यात्मिक पथ के लिए आवश्यक बतलाई है। अविद्या माया के विरोध में सोहलवें अध्याय के दूसरे श्लोक में अलोलुपता और अचापलता को विशेष रूप से निर्देशित किया गया है। यह भी बतलाया गया है कि चौबीस प्रकार की दैवी सम्पद् के रूप में मां साधक के हृदय में विराजमान रहती है।

साधक के हृदय में सम और दम दो दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं। उस के मन में विक्षेप का स्थान स्थिरता, स्वार्थ का स्थान निस्वार्थताले

लेती है। मां स्वयं भगवान विष्णु जी की आज्ञाकारिणी होने के नाते साधक को भी आज्ञाकारी भाव में देखने की इच्छा रखती है। मां पतिव्रत धर्म का परिपूर्णता की प्रतीक है तभी तो वह साधक के हृदय में गुरु के प्रति सेवा भाव में अनन्यता उत्पन्न करती है।

योग पथ में माँ साधक को विचारशील, दक्ष एवं जागरूक बनाती क्यों कि साधक में आलस्य, प्रमाद आदि नाम मात्र का भी नहीं होने चाहिए आलस्य के कारण साधक अनमोल वस्तुएँ भी खो बैठता है। साधक को इ जीवन विद्यालय में अनुभव द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करना होता है जो बिना दद ा के सम्भव नहीं। यह भी मां लक्ष्मी के दिव्य गुणों में से एक है।

योगाभ्यास में मां लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त शक्तियां अनुशासन, दृढ़ता, निष्ठ तत और निरंतरता हैं जिनके द्वारा साधक अपना आध्यात्म बल सुरक्षि सकता है। धैर्य और दृढ़ता भी दैवी सम्पद् के विशेष दो गुण हैं। इस ार सन्तोष भी मां लक्ष्मी की दिव्य देन है। घर में जो स्थान स्वच्छता का वही स्थान साधक के जीवन में हैं वाह्य एवं आन्तरिक शुद्धता का। स्वा- य और प्रसन्नता मां की विशेष विभूतियां हैं।

माँ की उपेक्षा मत करो

पारिवारिक तथा आध्यात्मिक जीवन में मां का गुणानुवाद करने के चात् इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि यहां मां की पूजा होता है वहीं श्री ्मी जी का निवास होता है। यहां माँ के उपस्थित गुणों को आदर न दिया ये वहां से सुख शान्ति उठ जाती है। यह तथ्य पारिवारिक तथा आध्या- ाक दोनों जीवन में सिद्ध है। इस सिद्धान्त को जान लेने के उपरान्त माँ अवहेलना का साहस कदापि न करना चाहिए। इसीलिए हिन्दुओं में ा जाता है कि भोजन पर बैठे क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध में भोजन अस्वीकार करना मूर्खता और है माँ का निरादर करना। भोजन में माँ

हिन्दू गृह में गृहलक्ष्मी इस बात का विशेष ध्यान रखती है कि अन्न न तो बिखरे ही और न ही आए इस पर पांव । अन्न लक्ष्मी है इस लिए इसे व्यर्थ में गवाना नहीं चाहिए । हम प्रायः इस बात को भूल जाते हैं । हम चाहे कितना ही अन्न दान करें और भूखे पशु-पक्षियों, गऊ, कुत्ते आदि को खिलाएँ परन्तु इसे अनादर देते हुए फैंकना नहीं चाहिए । मां की स्वतः होने वाली कृपा को यदि हम आदर नहीं देते तो फिर आवश्यकता होने पर भी माँ की कृपादृष्टि नहीं होती ।

साधक के जीवन में स्मृति का गुण भी लक्ष्मी स्वरूप है । "या देवी सर्वभूतेषु स्मृति रूपेण संस्थिता" । इसलिए जिज्ञासु को इस ओर उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिए । देवी सूक्त में कहा गया है कि माँ ही अखिल ब्राह्माण्ड की स्मृति है, गुरुमुख के वचनामृत भी वही है । ऋषि–मुनियों के दिव्य जीवन में भी उसी की दिव्यता प्रकाशित है । समस्त ब्रह्म ज्ञान स्मृति द्वारा हा सुरक्षित है । यदि हम मनन और निदिध्यासन नकरें तो उपदेश के लाभ से वंचित रह जाते हैं । स्मृति के दिव्य गुण के बिना गुरू शिक्षा का अनुसरण करना असम्भव है। हमें स्मृति के गुणको आदर देना चाहिए। इसलिए "मुझे याद नहीं रहा" आदि बहाना नहीं बनाना चाहिये । गुरू उपदेश का भुलाना महान् क्षति का कारण है । आओ हम मां लक्ष्मी से प्रार्थना करे कि वह हमारे घर तथा हृदय में अपने दिव्य गुणों सहित निवास करें और हम उस की कृपा का पूर्णरूपेण सदुपयोग कर सकें जिस के द्वारा हमारा इहलोक और परलोक का सुधार हो। अन्त में कुछ शब्द उन जिज्ञासु और साधकों के प्रति कहना चाहता हूं जिनको श्री सद्गुरूदेव कीछत्रछाया में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जो आनन्द कुटीर के योगी के उपदेशानुसार अपने जीवन को ढालने के प्रयत्न में हैं । इस स्थान पर माँ लक्ष्मी का विशेष रूप से निवास है क्योंकि हमें यह सुन्दर आश्रम, महान् संस्था, जिसमें हर प्रकार की दैवी सम्पद् भरपूर मात्रा में प्रदान की हुई है , यह मंगलमय स्थान, यह मानव जीवन, मुमुक्षुत्व की भावना और ऐसे सन्त का सतसंग जो सर्वदा ब्रह्म-

की छाया मात्र हैं जो तत्त्व स्वयं नाम-रूप और मन की पहुंच से परे है। इस प्रकार मां ही इस संसार का मौलिक स्रोत है। जब से जड़ और जीव की उत्पत्ति तथा जीवन कार्य आरम्भ होता है तब से सच्चिदानन्द से एक जीवन रस अखण्ड रूप से प्रवाहित होता हुआ अनेक नाम-रूप धारण कर लेता है और महामाया के क्षेत्र में आकर इस स्थूल जगत के रूप में भासित होने लगता है। उस समय महामाया पीछे हट जाती है और अपनी अन्य शक्तियों विष्णु माया एवं दुर्गा द्वारा इस कार्य को चलाए रखती है। परन्तु जब जीव पुनः ब्रह्म की ओर उन्मुख होता है तो योग साधन का पथ अपना कर स्थूल जगत की सब भावनाओं का त्याग कर पवित्रता, सत्य, दैवी सम्पद् तथा आध्यात्मिकता की सीढ़ियों से चढ़ता हुआ योग के उच्च शिखर पर पहुंच जाता है। तब माँ महा सरस्वती के रूप में प्रकट हो ज्ञान ज्योति प्रदान करती है जिसे आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान कहते हैं और जीव का आवगमन का चक्कर [illegible] हो जाता है फिर वह पुनः परम ब्रह्म में लीन हो जाता है। अतः मां सरस्वती ही है अनामी से बहुनाम-रूपों को उत्पन्न करने वाली, ज्ञानप्रदायिनी और फिर इस चक्कर से मुक्त कराने वाली। साधक को विशेष कर योगी को मां सरस्वती कैवल्य मोक्ष प्राप्ति के लिए विवेक और ज्ञान प्रदान करती है।

योगाभ्यास और सिद्धान्त

मां सरस्वती की मूर्ति दो दिव्य गुणों की प्रतीक है। मां के एक हाथ में वीणा, दूसरे में स्फटिक माला और तीसरे में पुस्तिका। माला और पुस्तिका इस बात की सूचक हैं कि माँ सरस्वती परा और अपरा तत्त्व की भण्डार हैं। वेद दाता, वेद पिता चतुर्मुख ब्रह्मा जी की अर्द्धांगिनी होने के नाते मां हाथ में वेद पकड़े हुए है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति और परब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है। आत्मबोध का पथगामी इस ब्रह्म ज्ञाम का सिद्धान्त इस पुस्तक अथवा गुरु द्वारा प्राप्त करता है। परन्तु इस की अनुभव प्राप्ति के लिये निदध्यासन आवश्यक है। माँ के दाहिने हाथ में पकड़ी हुई स्फटिक माला इसी योगाभ्यास की प्रतीक हैं। मां की इस दिव्य मूर्ति में सिद्धान्त और योगाभ्यास दोनों

पूर्णरूपेण पवित्रता—माँ

श्वेतवस्त्रालंकरित माँ सरस्वती शुद्धता एवं सुन्दरता की सर्वोच्च प्रतिमा है। श्वेतकमल, चन्द्रमा और हिमश्रृंखलाएँ पवित्रता के नाते आदि क्वारी धवलवस्त्रा मां सरस्वती से सम्बन्धित हैं। यह समस्त बतलाते है कि परब्रह्म के शुद्ध तत्त्व के रूप में माँ सरस्वती सर्वप्रथम प्रकट हुई थीं।

मां ही सर्वस्व है

वेदों के अनुसार हम यह जानते हैं कि परम ब्रह्म निर्गुण, निराकार से ंप्रथम प्रणव अक्षर ओ३म् की उत्पत्ति सत् संकल्प के अद्भुत स्पन्दन से ई–वेद में यह कहा गया है कि परम ब्रह्म ने संकल्प किया कि एकोहम् बहु–ाम् मैं एक हो जाऊँ। निर्गुण, अगोचर, अनामी एकमेय ब्रह्म बहुरूप किस प्रकार सदृश्य हुए, यह स्पष्ट करने के लिए ही सांकेतिक रूप से यह र्णित किया गया है। इस प्रथम शुद्ध संकल्प के स्पन्दन से प्रणव का नाद त्पन्न हुआ। यही नाद–ब्रह्म अथवा प्रणव स्वरूपिणी माँ सरस्वती है। शब्द ौर नाद के मेल से वाणी बनती है इसलिए माँ को वीणा वाणी भी कहते : । वीणा ध्वनी सूचक है और माँ स्वयं वाणी हैं। इसी वीणा की ध्वनी से ो वेद मन्त्र निकले हैं। उत्तरोत्तर इसी क्रम से यदि सोचा जाए तो यह पता चलता है कि यह जगत मां की वीणा के दिव्य राग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, और यह राग निरन्तर चल रहा है। यह जगत विभिन्न रूपों में सामने आता है। अनेकों नाम इन रूपों के सूचक हैं। नाम समूह से बनता है और स्पष्ट करता है ध्वनि को। ध्वनि और अक्षर स्वरूप के अर्थ में से रूप निकलता है। यही दृश्य जगत है। यही वह नाद है जिससे प्रत्येक अ ्र का उच्चारण होता है और जो माँ की वीणा के स्पन्दन से उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार मां सरस्वती की वीणा के दिव्य तारों से उत्पन्न हुए स्पन्दन से यह नाद, अक्षर, नाम, रूप आदि से न केवल यह जगत ही उत्पन्न हुआ बल्कि ब्रह्माण्ड में अनेकों जगत इसी अगोचर प्रवाह से निकले है। मां की वीणा के राग का दृश्य-रूप यही है। माँ सरस्वती ही सब की संचालिका, शुद्ध सत्व तत्व है जहां पहुंच कर साधक अमरत्व प्राप्त करता है। हमारे

लिए है मां का यह स्वरूप, उस की वीणा ओ३मकार रूप और नाद उस
है जगत की उत्पत्ति का मौलिक स्रोत।

अन्धकार विनाशनी ज्योति

दुर्गा सप्तशति में माँ महिषासुर जैसे असुरों का संहार करती है। इ
भाव को समझना रुचिकर होगा कि मां सरस्वती जगज्जननी होते हुए भी रौ
रूप कैसे धारण कर लेती है। जननी मां संहारकारिणी कैसे बन सकती है
परन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर हम यह जान पाते हैं कि जब जी
उत्सर्ग मार्ग में अपने जीवन-मरन का चक्कर समाप्त करने की स्थि
में होता है तो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। तब माँ लौकिक अर्थ
वास्तव में संहारकारिणी नहीं होती बल्कि उस ज्ञान ज्योति केसाम्राज
में प्रवेश करते ही जन्म-मरन के बन्धन स्वतः छूट जाते हैं। मां व
साक्षात्कार होते ही मृत्यु की भी मृत्यु हो जाती है। अन्धकार औ
अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार माँ किसी को नष्ट नहीं करती औ
उसके सम्मुख होते ही अन्धकार तथा अज्ञान रहते ही नहीं। जीव सदा-सद
के लिए संसार चक्कर से मुक्त हो शुद्ध ब्रह्म चैतन्य में एक रस हो जाता है
समस्त जगत तत्त्व कीसमाप्ति के लिये मां सरस्वती का अन्तर में साक्षातका
होना ही पर्याप्त है। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं का चक्कर समाप्त हो जात
है। जीव को पूर्ण ब्रह्म ज्ञान होते ही मानों मृत्यु की मृत्यु हो जाती है। इस
भाव को जान लेने के उपरान्त मां सरस्वती की पूजा का महत्त्व बहुत बढ़
जाता है। वही मोक्षदायिनी और विराट स्वरूपिनी विश्व विदित है। विश्व उस
का नाद स्वरूप है और समस्त विश्व मां सरस्वती का ही स्वरूप है। अतः
यह स्पष्ट हो गया कि मां की पूजा ही विश्व की पूजा, भगवान की पूजा है
अथवा उस सर्वोच्च शक्ति की पूजा है जो कि हमें जन्म-मरण तथा अज्ञान के
बन्धन से मुक्त कर परमधाम, अमर तत्त्व, अनन्त ज्ञान और परमानन्द सुलभ
कर देगी।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

ॐ प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामविन्त्र्यवतु ॥

अष्टम रात्रि

सफलता की देवी

जय सरस्वती जय सरस्वती जय सरस्वती पाहिमाम् ।
श्री सरस्वती श्री सरस्वती श्री सरस्वती रक्षमाम् ॥

ब्रह्मरूपिणी, अनिर्वचनीय शक्ति, परम सत्य. पराशक्ति, आदि शक्ति और महान् दिव्य मां सरस्वती को नमस्कार है । वही हमें दुःख, शोक और मृत्यु से मुक्त कर परम ब्रह्म का ज्ञान प्रदान करती हैं । उसे बार बार नमस्कार है ।

मानव के ज्ञान से परे अद्भुत दृश्य जगत और अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मां सरस्वती की ही सुन्दर छटा है । परम परमेश्वर की आदि शक्ति सर्व प्रथम गहन नाद के रूप में प्रकट हुई इसी लिए नाद रूपिणी सरस्वती की पूजा होती है । वही चिद्रूपिणी, शब्द रूपिणी और प्रणव रूपिणी हैं । वही पराशक्ति, अनन्त, शुद्ध चेतना, अचला और निष्क्रिया है । उसमें कोई स्पन्दन नहीं । यह निष्पन्दा है, उसमें कोई ध्वनि नहीं । यह अशब्दा, निष्पन्दा और निष्क्रिया है । आनन्दघन की इस अनन्त चेतना में एक रहस्यमय प्रयत्न बिन्दु है जो सब की उत्पत्ति का हेतु है । वह बिन्दु सर्व प्रथम नाद के रूप में प्रकट होता है । उस निर्मल चेतना के रहस्यमय प्रयत्न बिन्दु से उत्पन्न हुआ यह आदि शब्द का नाद ही माँ सरस्वती है । इसीलिए माँ सरस्वती का ध्यान शुद्ध श्वेत वस्त्रालंकृत मूर्ति के रूप में करते हैं जहां अन्य कोई रंग नहीं और नाद शक्ति वीणा है हाथ में । आदि नाद से शुद्ध ध्वनि उत्पन्न होती है फिर सम्बधित ध्वनियाँ और वाक निकलते हैं । वाक से वर्ण, वर्णों के मेल से अक्षर, नाम और उन के अर्थ निकलते हैं । नाम अर्थ सहित रूप में व्यक्त होते हैं, बस यही रूपमय दृष्टि विषयक जगत है । यह अनन्त रूपा जगत आदि शब्द ब्रह्म या माँ सरस्वती के गुण का ही प्रभाव है जिसने अपने आप को स्वयं ही ध्वनि, वाक, वर्ण, नाम और रूप में व्यक्त किया है । यही पराशक्ति समस्त जीव और वस्तु जगत में स्थित है । आज हमें यही देखना है । पिछले दिनों हमने श्री दुर्गा जी का ध्यान नाम रूप विनाशिनी और श्री लक्ष्मी

जी का त्रिकाल में पालनहारी के भाव से किया। उन्हें निर्दिष्ट करते हुए हम ने न केवल उनके मौलिक व्यापक भाव को ही देखा वरन् व्यवहारिक संसार में और जिज्ञासु के अन्तर में प्रवेश कर योग साधने के पथ पर पूर्णता की ओर जाकर परम ब्रह्म से सायुज्य अवस्था की प्राप्ति पर भी विचार किया। अब जब हम इस जीव जगत पर मां सरस्वती के प्रभाव का विचार करें तो देखते हैं कि भले ही बाह्य व्यवहारिक क्रियाओं में सरस्वती जी इतनी स्पष्ट रूप से भाषित नहीं हैं जितनी कि पराशक्ति दुर्गा जी और श्री लक्ष्मी जी। इसका कारण यह है कि वहाँ मां अपसर्ग और उत्सर्ग के दोनों किनारों पर स्थित है। अब यहाँ हम देखते हैं कि मां उत्पत्ति की प्रवृत्ति लिए हुए अव्यक्त को व्यक्त करने के लिए विराजमान होते हुए भी उत्पत्ति का मौलिक कार्य करने के उपरान्त अप्रधान स्थान में चली जाती हैं। एक बार अनामी के नाम रूपों को व्यक्त करने का कार्य आरम्भ करके शेष भार अपनी ही शक्तियों श्री दुर्गा जी और श्री लक्ष्मी जी को सौंप कर स्वयं पीछे हट जाती है। इसीलिए हमारा अधिक ध्यान पालनहारी और समय से सम्बन्धित शक्ति की ओर रहता है अथवा संहारकारणी शक्ति का प्रभाव भी विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि ममता के कारण मनुष्य अहंकृति भाव, नाम, रूप और वस्तुओं से आसक्त है इसलिए इनको बनाए रखने का प्रयत्न करता है और इनके नष्ट हो जाने पर बहुत दुःखी होता है। घोर आसक्ति के कारण वह किसी का विनाश अथवा मृत्यु चाहता ही नहीं। वह माँ लक्ष्मी द्वारा अपनेपन और अपनी वस्तुओं को बनाए रखना चाहता है परन्तु मां सरस्वती द्वारा उत्पन्न वस्तु तो केवल उत्पत्ति के समय एक बार ही ध्यान आकर्षित करती है इसलिए सरस्वती तत्त्व का अनुभव अधिक नहीं हो पाता। यह निश्चित है कि वह है, क्यों कि इस जीव जगत का होना ही इस बात को सिद्ध करता है कि माँ सरस्वती हैं और उन के बिना उत्पत्ति हो ही नहीं सकती।

सफलता का रहस्य

माँ सरस्वती की आरम्भा देवी के रूप में भी पूजा होती है क्योंकि यह उत्पत्ति के प्रवाह का आरम्भ करती हैं। सर्व आरम्भ का स्रोत यही मां है।

हिन्दू समाज में एक और विशेष बात देखने में आती है कि मां सरस्वती सर्व आरम्भा देवी के साथ-साथ सर्व प्रथम गणपति जी की पूजा की जाती है क्योंकि गणपति जी विघ्नविनायक माने जाते हैं। इसलिए सब निषेधात्मक बातों को दूर करने के लिए "न" कारात्मक पूजा पहले की जाती है अर्थात् कोई विघ्न आदि न हो ऐसी प्रार्थना की जाती है। परन्तु मां सरस्वती तो विद्या, बुद्धि और सफलता देने वाली हैं इसलिये सिद्धि पूजा में इन वस्तुओं की कृपा याचना की जाती है। उदाहरणार्थ परसों जब हम उत्पत्ति स्रोत पर विराजमान मां सरस्वती की पूजा करेंगे तो वह दिन होगा विजयदशमी का और इस दिन विज्ञान तथा कला विद्या का आरम्भ करना सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत शुभ माना गया है। राग विद्या और सर्व अर्थकरी विद्या के यन्त्रों की इस विजयदशमी के दिन पूजा होती है। नवमीं और दशमी के दिन विद्या पूजा में पुस्तकों का पूजन करने के उपरान्त शुभ मुहूर्त में विद्यारम्भ कर दी जाती है।

यह तो मनुष्य की बाह्य क्रियाओं से सम्बन्धित बातें हैं, परन्तु इस के साथ-साथ इस दिन (विजयदशमी) से आन्तरिक आध्यात्मिक उत्थान का भी विशेष सम्बन्ध है इस आश्रम में भी इस दिन विशेष उपदेश के रूप में माँ सरस्वती का आवाहन किया जाता है। उपदेश आरम्भा देवी सरस्वती का रूप है। जैसे नाद वाक और वर्ण का रूप धारण कर लेता है वैसे ही सब मन्त्र भी इन्हीं रहस्यपूर्ण वर्णों के मेल से बने हैं। इसी लिए मन्त्रों में सरस्वती शक्ति का होना माना गया है। इन के जाप से साधक परम लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करता है। तभी तो सब जिज्ञासुओं को मन्त्र दीक्षा के रूप में मां सरस्वती की प्राप्ति का उपदेश दिया जाता है, यहीं से साधक के आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन का उत्सर्ग आरम्भ होता है। माँ के एक हाथ में वैदिक ज्ञान की पुस्तिका और दूसरे हाथ में स्फटिक की माला उस ज्ञान के अभ्यास की सूचक है।

इस विशाल संसार में मानव जीवन की जो भी गति विधि चल रही है सब मां सरस्वती का खेल है। इस भूमण्डल तथा आकाश के वैज्ञानिक

अनुसन्धान, अनेक प्रकार की खोज और आविष्कार, विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग आदि उसी माँ के खेल और प्राकट्य हैं।

इस के साथ-साथ यह भी विचार करना है कि माँ ही सब कुछ की आरम्भा है। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में भी उसी का निवास है। चार पहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् ज्ञानप्रदायिनी सरस्वती सुप्रभात को अपनी दिव्य शक्ति से भरपूर कर देती है। इसी प्रकार नव वर्ष दिवस भी दिव्य शक्ति सरस्वती का विशेष दिन है। व्यापारी को श्री सरस्वती के पूजन से ही व्यापार आरम्भ करना चाहिए क्योंकि सब प्रकार के नवीन कार्यों में वही सफलता प्रदान करने वाली है। इस आनन्द कुटीर में तो हम प्रत्येक कार्य मां सरस्वती के आवाहनोपरान्त आरम्भ करते हैं। प्रत्येक कार्य में नींव खोदते हुए आधारशिला रखने के समय मां सरस्वती की ही पूजा की जाती है।

समस्त व्यापार भी इसी पूजा भाव सहित करना चाहिए। जहां त मुझे मालूम है दक्षिण भारत में व्यापार की गति विधि में माँ सरस्वती व पूजा की प्रथा है। महाराष्ट्र में सरस्वती पूजा के फलस्वरूप प्राप्त धन क और व्यापारी लोग अधिक आकर्षित हैं इसीलिए श्री लक्ष्मी जी का पूजन बहुत करते हैं। ढंग कोई भी हो है माँ की ही पूजा। परन्तु यह जान लेना चाहिये कि मानव की समस्त गति विधि माँ के भिन्न-भिन्न भावों का ही खेल है। कहीं श्री लक्ष्मी जी, कहीं श्री दुर्गा जी तो कहीं प्रत्येक कार्य में श्री सरस्वती जी के रूप में हम माँ को देखते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर हमें प्रत्येक कार्य में पराशक्ति की पूजा का भाव ही रखना चाहिये तभी हमारा व्यवहार हमारी आत्मोन्नति का हेतु हो सकेगा। इस अभ्यासोपरान्त हम ट मटोल नहीं कर सकते कि हमारे पास पूजा, ध्यान तथा योग साधन के लि समय नहीं है। ऐसा कहने का अर्थ यह होगा कि हम प्रतिक्षण मां की महि का अनुभव नहीं कर पाते।

मनुष्य निराशावादी स्वभाव वश ऐसा सोचता है कि मैं आध्यात्मि
[illegible] प्रतिपादन हो, ऐसी कोई आशा नहीं है

यह सबसे बड़ी भूल है। भारतीय संस्कारों से ओतप्रोत श्रद्धावान हिन्दू जीवन को आत्म साक्षात्कार का आदि साधन मानता है। धर्मात्मा हिन्दू के लिए तो यह शरीर "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा" है। यह जीवन वो सुअवसर है जब कि जीव मोक्ष पद की प्राप्ति शीघ्रता से कर सकता है। हमें ऐसे ही भाव में रहने का प्रयत्न करना चाहिये। हिन्दू सभ्यता में जीवन का समस्त गति विधि धर्म से सम्बन्धित है। इस भाव को स्वीकार करते ही सम्पूर्ण जीवन में परिवर्तन आ जाना चाहिए।

हम अधम है, आध्यात्मिक उन्नति से दूर हैं, हमें साधन की सुविधाएँ प्राप्त नहीं हुईं आदि सोचते हुए ही पश्चाताप में जीवन नहीं बिता देना चाहिये। बल्कि इस के विपरीत प्रत्येक कार्य बड़े उत्साह, हर्ष और उच्चभाव से करना चाहिए कि मानों बड़ी ही तन्मयता से मातृपूजा कर रहे हों। तब मनुष्य को व्यवसाय, स्थान और परिस्थिति बदलने या वनों में जाकर रहने और परम्परागत निवृत्ति मार्ग का जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। यदि एकान्त साधन और ध्यान का समय स्वतः सुलभ है तो अति सुन्दर, परन्तु बहुधा ऐसा सम्भव नहीं होता, तो भी इस में पश्चाताप करने की कोई बात नहीं क्यों कि एक प्रकार से सर्व कार्य योग साधन हो सकते हैं केवल उचित भाव और उचित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यही एक विशेष तथ्य है जिसका अनुभव नवरात्रों में मातृपूजा से प्राप्त होता है। हाथों द्वारा कार्य, आँखों का देखना, कानों का सुनना, वाणी का बोलना आदि माँ की ह पूजा है। इस बात का स्मरण रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने हमें नवरात्र में शक्ति पूजन का पर्व दिया। इसलिए माँ के सब बच्चों का यह सर्व प्रथम कर्त्तव्य है कि जीवन के प्रत्येक में जो निरन्तर मातृ पूजा का सु-अवसर प्राप्त हुआ है उसे सदा-सदा के लिए स्मरण रखें।

हमें मनुष्य शरीर जैसा अद्भुत उपहार प्राप्त कर के प्रसन्न होना चाहिए क्यों कि इस में मातृ शक्ति की महानता और वैभव गान की क्षमता है। यह आत्म साक्षात्कार करने का दुर्लभ अवसर है यदि माँ की बाह्य पूजा, को आध्यात्मिक भाव दे दिया जाए। तदोपरान्त माँ महात्माओं के सम्पर्क

उपदेश और दीक्षा के द्वारा आन्तरिक शक्ति प्रदान करती है। वह हमारी उन्नति के लिए मन्त्र शक्ति और उच्चकोटि के ध्यान के रूप में आती है जो कि समाधी का मुख्य द्वार है। साधक को समाधी में होने वाले वास्तविक माँ के साक्षात्कार का नाम ही आत्म ज्ञान है। उसी समय मातृ पूजा की पूर्ति और हमें जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति होती है। उस अवस्था में निरन्तर परमानन्द लेनें के अतिरिक्त और कोई भी कार्य शेष नहीं रह जाता। यही शक्ति का रहस्य है।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभंगरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भंगिरुचिभि-
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनं कमलामोद मधुरैः ॥

ऊँ भूर्भुवस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

नवम रात्रि

मोक्ष का मार्ग

गीता गंगा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥

उस मातृ शक्ति को नमस्कार है केवल जिस के द्वारा ही साधक को सत्य का वास्तविक ज्ञान होता है। जो माँ जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का रहस्यमय खेल खेल रही है उसे नमस्कार है। वही परमतत्त्व को अनेक नाम रूपों में प्रकट करती है। उसी की माया में जीव भ्रमित हो कर साँसारिक जाल में बंध जाता है। उस विद्या माया के महा सरस्वती रूप को बार-बार नमस्कार है जो बन्धनों से मुक्त कर साधक को कैवल्य धाम और मोक्ष पद प्रदान करती है।

आज अन्तिम दिन है नवरात्र पूजन का। यह उस की असीम कृपा और दया है कि हमें उस के चरणों की पूजा-अर्चना करने का दुर्लभ सुअवसर प्राप्त हुआ जिस के द्वारा हमारा मन आत्म साक्षात्कार के लक्ष्य की ओर एक

पग आगे अग्रसर हुआ।

उस की कृपा का परावार नहीं है। अनन्त है। मनुष्यों पर और विशेष-
[illegible]र साधकों एवं जिज्ञासुओं पर वह बहुत ही दयावान है। जैसे मां सदैव
[illegible]पने बच्चों को गोद में लेने की इच्छुक होती है। ठीक इसी प्रकार दिव्य
[illegible]क्ति जिसने यह क्षणभंगुर खेल वाह्य जगत के रंगमंच पर रचा हुआ है,
[illegible]स बात की इच्छुक है कि जो बच्चे जी भर खेल चुके हैं, मन जिन का
[illegible]चाट हो चुका है खेल-खेल कर और पुकार रहे हैं "माँ। माँ॥ हमें अब
[illegible]ौर नहीं खेलना है, आप से बिछुड़े बहुत देर हो गई इसलिए कृपया मुझे
[illegible]पनी गोद में ले ले" उन की माता पुनः गोद में ले लेती है। यही है जीव
[illegible]ी पुकार, जिज्ञासा और मुमुक्षत्व। जब अनन्त का संदेश सुन लेने पर
[illegible]ाणी को खेल से अरुचि हो जाती है तब वह संसार से मुख मोड़ मां की
[illegible]ोर देखने लगता है। माँ की एक ही दया दृष्टि से सारी थकान मिट जाती
है, खेल में पड़ी हुई धूल सदा के लिए हट जाती है और स्वच्छ बालक
परमानन्द के उच्च शिखर पर पहुँचते ही माँ की पवित्र एवं सुखमय गोद
पुनः प्राप्त कर लेता है। मानों खोया हुआ घर फिर मिल गया हो। हम
भटकते-भटकते बहुत दूर निकल गए हैं अपने सर्वश्रेष्ठ सच्चिदानन्द के परम
धाम जैसे घर को भूल कर। उस परम धाम की पुनः प्राप्ति की इच्छा को
[illegible]ई आध्यात्मिक पिपासा कहते हैं और यह साधना है।

अब हम यह जान गए हैं कि महाशक्ति विद्या माया और अविद्या माया
[illegible]ी है। इन दोनों भावों में यह तीन रूपों में अभिनय करती है—दुर्गा, लक्ष्मी
[illegible]था सरस्वती। कल हमने इस बात की चर्चा की थी कि किस प्रकार माँ
अपने सात्विक ओंकार रूपिणी एवं नाद स्वरूपिणी होते हुए भी वाह्य जगत
के कार्य क्षेत्र में अपनी प्रवृत्ति से प्रकट होती है। मां सर्वोच्च विद्या स्वरूपिणी
होते हुए भी रहस्यमयी अविद्या माया भी है। इस भाव प्रवृत्ति को सरस्वती
तत्व कहते हैं।

मुख्य रूप से मां सरस्वती विद्या माया है और जीव के विभिन्न मार्गों में

अधिक सहायक होती है। निवृत्ति के जीवन से प्रभावित हो कर ही आज के दिन हम मां के चरणों की पूजा करते हैं क्यों कि प्रवृत्ति में माँ कार्य की गति विधि है। सब पर उसी की कृपा है। वह है वैज्ञानिक की अनुसन्धान शक्ति, कवि की कविता, रागी का राग और कला चित्रकार की। वैज्ञानिक के अनुसन्धान की खोज, आविष्कार और बुद्धि की समस्त सूझ-बूझ मां ही है। सब व्यवसाय, समस्त व्यापार और धन्धे, शिक्षा आदि मां का ही बाह्य प्रकटीकरण है।

संक्षेप में हमने मां का वह क्रम भी देखा जिस के द्वारा हम पुनः उस अनिर्वचनीय परम तत्त्व की ओर अन्तर से अग्रसर होते हैं। यही है वह निवृत्ति मार्ग जिस में गुरु दीक्षा ले कर योग साधन किया जाता है। माँ सरस्वती ही मन्त्र, जाप और अनुष्ठान साधना है। इसीलिए मां की मूर्ति इतनी शुद्ध, पवित्र, श्वेत, सुन्दर और ज्योतिर्मय हम देखते हैं।

सतोगुणी मातृ शक्ति

सतोगुणी भाव से माँ साधक के हृदय में प्रकट होती है और मां सरस्वती की कृपा होते ही साधक के हृदय में ज्ञानोदय हो जाता है जिस से उस का सारा जीवन ही बदल जाता है। साधक की स्थूल और पाशविक जगत की प्रवृत्तियां शनैः शनैः निश्चित रूप से समाप्त हो जाती हैं क्यों कि सतोगुण की ज्योति के आगे तमोगुणी अन्धकार ठहर नहीं सकता। सतोगुणी जीवन विशेष शक्ति रखता है और साधक में तमोगुण पर पूर्णरूपेण विजयी होने की सामर्थ्य आ जाती है। विषय वासनाओं तथा कामनाओं से साधक अपरिचित सा हो जाता है और भोग विलास उसे दुःखदाई से प्रतीत होने लगते हैं।

श्री सरस्वती जी की कृपा होने पर रजोगुण में भी परिवर्तन आ जाता है। स्वार्थमय कार्य को रजोगुणी कहा जाता है, लोभ-लालसा इसके साथ चिपटी रहती है। क्रियाशील होना अच्छा है। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति इस के बिना नहीं हो पाती। परन्तु जब क्रियाशीलता को लोभ, लालसा एवं स्वार्थ का रंग दे दिया जाता है तो यह कड़े बन्धनों का कारण बन जाती है।

इस के प्रभाव को क्षीण करने के हेतु जब सतोगुण का उदय होता है और साधक निवृत्ति पथगामी बनता है तो सतोगुणी बलशाली अंकुश से रजोगुण नियन्त्रण में आ जाता है और सतोगुणी मार्ग पर कार्य करने लगता है। तब रजोगुण तमोगुण से सम्बन्ध विच्छेद कर सतोगुण से नाता जोड़ लेता है। इस प्रकार साधक को जीवन की बहुत बड़ी निधि प्राप्त हो जाती है। तदुपरान्त रजोगुण की सहायता से सतोगुणी साधक आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होता हुआ लोक हितार्थ सार्वजनिक कार्य करने लगता है। उस में निस्वार्थ, दया आदि जैसे सात्विक गुण आ जाते है और वह शुद्ध भाव से जनता की जनार्दन के रूप में सेवा करता है, यही कर्मयोग है। इस प्रकार साधन पथ की दो बड़ी रुकावटें सदा के लिए नष्ट हो जाती हैं। अतिरिक्त निद्रा के तमोगुण समाप्त सा ही हो जाता है और रजोगुण निवृत्ति मार्ग में सतोगुणी साधक का सहायक बन जाता है। यह माँ सरस्वती की असीम कृपा का बहुत बड़ा लक्षण है।

यदि श्री मद्भगवद्गीता का सत्रहवाँ अध्याय पढ़ा जाए तो वहाँ से सतोगुण रजोगुण और तमोगुण के विभाजन का पता चलेगा और उस गुणमय विभाग में सतोगुण है माँ सरस्वती। साधक और जिज्ञासु के लिए माँ ही योग साधना और ज्ञान ज्योति है। सात्विक भाव में साधक सदाचारी बनता है जो आध्यात्मिक जीवन का आधार है क्यों कि सदाचार का वैज्ञानिक रूप राज योग के यम-नियम हैं।

गुरू वाक्य ही वेदोक्त सत्य है

वाक-शब्द तथा नाद में माँ का निवास है। साधक को यह तीनों गुरू प्रदत्त मन्त्र दीक्षा द्वारा उपलब्ध होते हैं। इसलिए हमें मन्त्र को मां का स्वरूप जान कर ही उस की उपासना और अभ्यास सद्गुरू वाक्यानुसार करना चाहिए। मन्त्र की अवहेलना प्रभु नाम, गुरू एवं माँ सरस्वती की अवहेलना है। यदि हम अवहेलना करते हैं तो हमारी आध्यात्मिक अवनति निश्चित है।

व्यापक रूप से माँ साधक के प्रति गुरू के दैनिक उपदेश द्वारा प्रकट होती रहती है। इसलिए साधक का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि गुरु उपदेश को गम्भीरता पूर्वक सुन कर उसे ग्रहण कर श्रद्धा पूर्वक उस का अनुसरण करे। असावधानी उसे नहीं करनी चाहिए। साधक के लिए गुरू वाक्य ही श्रुति वाक्य एवं मन्त्र हैं। "मन्त्रं मूलं गुरोर्वाक्यं"। जिज्ञासुओं में गुरु वचनों को साधारण समझने, उन को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण न करने और उन को उचित आदर न देने की प्रथा बहुत चल गई है। प्रायः यह देखने में आया है कि सद्गुरू के सम्पर्क से साधक अथवा शिष्य में उपदेश वाक्य को ग्रहण करने की शक्ति कम हो जाती है और अपनी असावधानी के कारण बहुत कुछ खो बैठते हैं। इसलिए अपने गुरू के प्रति उचित भाव रखने के लिए हमें बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है क्यों कि गुरू वाक्य माँ सरस्वती के वाक्य हैं। केवल गुरू वाक्य को श्रद्धा, विश्वास से सुनने और अनुसरण करने से ही माँ सरस्वती की कृपा का पूर्ण सदुपयोग हो जाता है।

स्वाध्याय की व्यवहारिक उपयोगिता

आध्यात्मिक साधन में माँ का और भी स्थान है। जैसे हमने कहा कि मां वेद मूर्ति है और वेदों में है परन्तु ब्रह्म का ज्ञान, उपनिषद् वेदज्ञान प्राप्ति में हैं सहायक और उपनिषदों का सार श्री मद्भगवद्गीता के रूप में संसार को दिया गया है। श्री गीता जी में श्री सरस्वती स्वयं विराजमान है। इस लिए सभी आचार्यों के मतानुसार साधक को नित्य प्रति श्री मद्भगवद्गीता का स्वाध्याय करना चाहिए। श्री गीता जी की मां के रूप में पूजा नित्य प्रति स्वाध्याय और अभ्यास द्वारा होनी चाहिए। श्री गीता जी का अध्ययन श्री गुरूदेव जी महाराज ने साधक को दिव्य जीवन की दिन चर्या में विशेष आवश्यक बताया है। हमें यह भी जानते कि पातंजलो दर्शन के नियम एक विशेष अंग हैं।

हम इस निर्णय पर पहुंच चुके हैं कि स प्रकार मां सरस्वी आदि शब्द से ध्वनि, ध्वनि से वाक, वाक से वर्णाक्षर, वर्णाक्षरों के मिलाप से नाम, नाम से अर्थ और अर्थ से रूप उत्पन्न करते हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि

धारणा और ध्यान के अभ्यास म यह शुद्ध विचार मन को एक करने में बहुत सहायक होते हैं। आरम्भ में साधक का मन ध्यान के सा बहुत भटकता है और मानसिक सन्तुलन डावाँ डोल हो जाता है, बार-ब मन को लक्ष्य पर लाया जाता है और वह भागता रहता है अनुचितता यह है कि ध्यान के समय मन विशेषकर विषय भोग के विचा के प्रवाह में वह जाता है। मन का यह भटकना वैराग्य के अभ्यास के सा धीरे-धीरे रोका जा सकता है। उतने समय के लिए भी स्वाध्याय द्वारा गृही शुद्ध विचारों से मानसिक विक्षेप को सात्विक बनाया जा सकता है। कुविचार में घूमने की अपेक्षा मन शुद्ध, पवित्र और सर्वोच्च सात्विक विचारों में घूमने लगता है, जो कम हानिकारक हैं। इस प्रकार स्वाध्याय भी बहुमूल्य साधन निधि है।

मितभाषण

अब हम साधक के वास्तविक आचार की ओर आते हैं। यहां दिए गए कुछ निर्देश साधक के दैनिक आचार में अत्युपयोगी होंगे। मां भाषा और वाक के रूप में प्रकट है। वाक शक्ति भी वही है। इसलिए मौन द्वारा सरस्वती शक्ति को एकत्रित करें। यह वाक शक्ति जब संचित कर ली जाती है तो याग साधन में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के समय बहुत उपयोगी सिद्ध होती है विशेषकर आत्म निरीक्षणार्थ मौन अत्याधिक लाभदायक है, यह बात अनुभव सिद्ध है। जब तक वाक शक्ति वाह्य उपयोग में लाई जाती है तब तक मनन और आत्म निरीक्षण सम्भव नहीं परन्तु जब वाक शक्ति को संचित कर लिया जाता है तब बुद्धि, विवेक और विचार अन्तर्मुखी हो जाते है और स्व की खोज की क्षमता आ जाती है।

सत्य भाषण

पवित्र वाक शक्ति की शुद्धि को सुरक्षित रखना साधक का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। हमारा कर्त्तव्य माँ सरस्वती की पवित्रता को वाक के माध्यम में

भी बनाए रखता है। असत्य भाषण पाप और अपवित्र है। इसलिए जो साधक उस परम सत्य को प्राप्त करना चाहता है उसके लिए अनिवार्य है कि वह सत्यभाषी हो। साधक के लिए वाणी में सत्यप्रियता का होना अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। यह अवर्णननीय है। साराँश यह कि सत्य के बिना साधक का आध्यात्मिक जीवन नहीं के बराबर है। लेशमात्र भी आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो सकती जब तक कि मन, वचन और कर्म सत्यमय न हो जावें। यह मार्ग बिना किसी पगडन्डी के है। सत्य या असत्य का मार्ग अपना-अपना है। दोनों के बीच का कोई मार्ग नहीं। असत्य के रास्ते पर आध्यात्मिक उन्नति एक स्वप्न मात्र है, उन्नति की आशा ही नहीं की जा सकती। इसलिए जिज्ञासुओं में यदि जन्म-मरण के बन्धन और दुःख शोक से भरे संसार के मोह से मुक्त होने की सच्ची लग्न और परमानन्द प्राप्ति की वास्तविक लालसा है तब केवल एकमेव सत्य का ही मार्ग है। तभी मां सरस्वती साधक पर कृपा-दृष्टि करेगी। सत्य का ज्ञान साधक को तभी प्राप्य होगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु हमें नित्य प्रति माँ सरस्वती की शुद्ध सत्य ज्योतिर्मय मूर्ति का ध्यान करना होगा। माँ की सत्य ज्योति की महिमा को स्वीकार करते ही आत्मज्ञान के सूर्य का उदय होने लगता है। इसलिए आओ सत्य के रूप में माँ सरस्वती का ध्यान करें। सत्य ही सर्वोत्तम याग है। कलियुग में यह सब से बड़ी तपस्या और तितिक्षा है। जिसके पास सत्य है उस के पास है भगवान:—

"सत्य बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप
जाके हृदय सत्य है ताके हृदय आप"

आओ हम सत्य के इस महत्त्व को समझें, सत्य का ध्यान करें, इस पर विचार करते हुए मन, वचन, कर्म से धीरे-धीरे बढ़ें सत्य की ओर तथा मां सरस्वती से इस कठिन कार्य की सफलता के लिए सहायता की प्रार्थना करें।

मधुर भाषण

संसार में शब्द और भाषा का प्रयोग भी बहुत बड़ी शक्ति रखते हैं।

वाणी द्वारा बड़े-बड़े निर्माण कार्य किए जा सकते हैं और इसी के द्वारा बना बनाया खेल नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है। माँ सरस्वती सब की निर्माता है इसलिए साधक को सदैव वाणी पर संयम रखना चाहिए। भूल से भी कोई दुःखदाई तथा अपशब्द उस की वाणी से नहीं निकलना चाहिए। कटु वचनों को अपनी भाषा में स्थान देना ही नहीं चाहिए। साधक का प्रि भाषी होना परमावश्यक है। जब प्रिय भाषण असम्भव हो तो मौन रहना ह उचित है। एक घटिया ढंग यह भी है कि कटु वचन कहने के उपरान्त दूसरों से क्षमा याचना कर ली जावे परन्तु यह तो तीसरी श्रेणी की बात है, हमें तो प्रथम श्रेणी के उत्तमाधिकारी बनने का प्रयत्न करना है। हमारी वाणी मधुर और प्रिय होनी चाहिए। मित भाषण, सत्य भाषण और मधुर भाषण सदा स्मरण रक्खो।

वाणी संयम

वाणी शक्ति है। इस में माँ सरस्वती का निवास है। इसलिए इसका प्रयोग कार्य व्यर्थ न करते हुए दूसरों के हितार्थ ही करना चाहिए। यदि बोलना ही हो तो भगवद् चर्चा करें, उच्चादर्श की बातें करें। दूसरों का उत्साह बढ़ाएँ, दुःखी को धीरज दें। शिक्षा भरी बात करें अर्थात् किसी न किसी प्रकार मां सरस्वती की प्रदत्त वाणी शक्ति द्वारा दूसरों की सहायता करें। साधक को व्यर्थ की गप-शप से अपने आप को बिलकुल अलग रखना चाहिए। गप-शप लगाना माँ की महत् वाक शक्ति का अपमान करना है।

साधक को कभी भी अपशब्द नहीं बोलने चाहिएं। दुर्गुण कठि से जाते हैं। गुणों का बहुधा दुर्गुणों द्वारा निरादर किया जाता है। क्य पूर्वकालिक अभ्यस्त दुर्गुण मनुष्य की पाशविक वृत्तियों में घर कर चुके हैं। हम उस साँसारिक वातावरण में रहते हैं जिस में पच्चत्तर प्रतिशत सभ्य भाषा का प्रयोग होता है और पच्चीस प्रतिशत सभ्य भाषा का। अ शब्द और असभ्य भाषा बहुत से लोगों की भाषा का एक अंग बन कर गई है। उन की बुद्धि इस को अनुचित मानती ही नहीं परन्तु यह मापदर

साधक के लिए नहीं है। साधक की भाषा तो अपशब्द रूपी मैल से रहित श्री गंगा जी के जल की तरह शुद्ध—पवित्र होनी चाहिए।

इस प्रकार साधक माँ सरस्वती के शुद्ध मतोगुणी तत्व का उदय कर सकता है निज अन्तर में। उपरोक्त साधन सात्विक वृत्तियों को बढ़ावा देते हुए आध्यात्मिक उन्नति में सहायक सिद्ध होते हैं।

हमें माँ सरस्वती के इन सब भावों को स्मरण रखना होगा। जीव के द्वारा मां निवृत्ति भाव में साधक की आन्तरिक उन्नति करती है। यहाँ हमने थोड़े से गुणों की ही चर्चा की है। यदि हम इन बातों पर विचार करेंगे तो देखेंगे कि माँ विभिन्न प्रकार से साधक के आन्तरिक व्यक्तित्व में आकर उस का सुधार करती है और हम यह जान पाते हैं कि कौन-कौन सी सात्विक भाव से प्रतिकूल बातें हैं जिन से अपना बचाव करना आवश्यक है। ऐसा करने से माँ अपने आप अपनी सात्विक शक्ति द्वारा सद्गुणों की वृद्धि कर दुर्गुण एवं अपवित्रता को नाश करने की हमें क्षमता और बुद्धि प्रदान करेंगी। तब हम आध्यात्मिक रहस्यों का उत्तरोत्तर अनुभव करते हुए अपने सत् स्वरूप की प्राप्ति का ज्ञान प्राप्त कर इस बात की घोषणा कर उठेंगे कि "मैं न मन हूं न शरीर हूं; मैं अविनाशी तत्त्व हूं" "शुद्धोहम्, बुद्धोहम्, निरंजनोहम्, संसार माया परिवर्जितोहम्" "सच्चिदानन्द स्वरूपोहम्"। यह घोषणा स्वतः ही उस साधक के मुख से निकलती है जिस पर माँ सरस्वती की कृपा पूर्ण-रूपेण हो चुकी हो। उस के हृदय में मां की दिव्य ज्योति का प्रकाश हो चुका होता है जिस में वह आत्म दर्शन कर लेता है। प्रथम आत्म साक्षात्कार स्वयं मां सरस्वती ही है।

इडादेवहूर्मनुर्यज्ञनीर्बृहस्पतिरुक्थामदानी शँसिषद् विश्वेदेवाः सूक्तवाचः पृथिवी मातर्मा माहिँसीः मधु मनिष्ये मधु जनिष्ये मधु वक्ष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासँ शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तम्मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्तु।

ॐ

विजय दशमी

[महा]न् लक्ष्य और उस की प्राप्ति

तवामृतस्यन्दिनि पादपँकजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते ॥

आज माँ की विजय का उत्सव है। इस विजय पर समस्त देवी-देवत[ा] तथा मानव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्यों कि उन को सर्वसामर्थ्य का आश्वास[न] मिल जाता है कि जब तक वह माँ के आश्रित रहेंगे उन्हें कठिनाई में सहायत[ा] और शक्ति मिलेगी इसलिए कि मां दीन दुःखियों तथा शरणागतों की रक्ष[क] है। वह महाशक्ति है, तभी तो मां की शरण लेने मात्र से ही दुर्बलता न[ष्ट] हो जाती है। सब प्रकार के अज्ञान और अन्धकार पर विजय प्राप्त कर ल[ी] जाती है और हम आनन्द लेते हैं माँ के साथ विजय प्राप्ति का। साधकों के लिए विजय दशमी का दिन श्रद्धा, विश्वास, शक्ति और उत्साह का दि[न] होता है।

विजयदशमी के दिन जिज्ञासु एवं भक्त को बहुत शक्ति मिलती है जिस[से] उन सब विरोधी शक्तियों का नाश हो जाता है जो कि उस की ईश्वर प्रा[प्ति] के मार्ग में रुकावट बनी रहती हैं। इस दिन परमब्रह्म की प्राप्ति का द्वार मा[ँ] खोल देती हैं। आज के दिन विद्या महामाया का पूजन शुद्धता एवं पवित्रता से होना चाहिए। अब तक हम ने नवरात्रों में मां की पूजा भिन्न-भिन्न भा[वों] [illegible] संसार के परिवर्तनशील चक्कर से था। ज्यों ही ह[म]

विजय दशमी के दिन शुभ पर्व पर उसे बार-बार नमस्कार।

आज के दिन आसुरी शक्तियों का नाश होता है। आसुरी सम्पद रहती ही नहीं है। अन्धकार का लोप हो जाता है। सर्व प्रकार से माँ को विजय होती है। वही अनन्त चेतना शक्ति है। उस की ज्योति शक्ति का आवाहन करना ही पराशक्ति की पूजा में संलग्न होना है। इसलिए अब उस परम शक्ति की पूजा आरम्भ करते हैं जहां जन्म-मरण का भय नहीं रहता। उस अनन्त ज्योर्तिमय लोक से दुःख-भोग के लिए लौट कर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। सदा के लिए उस प्रदेश में पदार्पण हो जाता है जहां दुःख, दर्द, भ्रम और शोक है ही नहीं। वास्तव में उस लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए ही हमें यह मनुष्य जीवन मिला है और साधक इस प्राप्ति को ही अपना परम लक्ष्य मानता है। अन्य सभी लक्ष्य भ्रमजनित हैं। इस दुर्लभ शरीर को प्राप्त करने का अभिप्राय अतिरिक्त ईश्वर साक्षात्कार के अन्य कोई नहीं है।

परम शक्ति पुँज—गुरू

आइये इस महान् उत्सव के दिन हम अपने आध्यात्मिक जीवन के महान् रहस्य की खोज करें। इस से पूर्व हम ने माँ दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती की सांसारिक, उत्पत्ति, स्थिति और लय के भिन्न-भिन्न क्रम का मनुष्य जीवन पर प्रभाव की चर्चा की परन्तु यह सारा विचार अव्यक्त रूप में था। माँ अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के साथ एक दिव्य मूर्ति के रूप में भी व्यक्त होती है। इस गम्भीर रहस्य का ज्ञान साधक को भगवत् कृपा से ही चलता है। वह जान लेता है कि श्री गुरू ही माँ सरस्वती का स्वरूप है। शिष्य के प्रति यह स्पष्ट हो जाता है कि मां का विद्या-माया और विद्या-शक्ति का रूप मेरे श्री गुरूदेव के व्यक्तित्व में ही है। वही मां सद्गुरू है। साधक के लिए पराशक्ति मां पूर्ण रूपेण उस के आध्यात्मिक पथ के गुरू के रूप में प्रकट हुई हैं। इसी भावना पर आधारित है साधक का सारा आध्यात्मिक जीवन। वही भावना हिन्दु संस्कृति की आधारभूत है। यह अद्वितीय भावना

संसार के अन्य किसी मत में नहीं मिलती। अपने सद्गुरू को परमब्रह्म मान लेना ही साधक की सफलता का रहस्य है। आध्यात्मिक पथ के प्रत्येक क्षेत्र में साधक के लिए एकमात्र गुरू की शरण ही टेक है। गुरू स्वयं ही पराशक्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अक्षर ब्रह्म है। यह ऐसा सत्य है कि जिस को साधक अपने आध्यात्मिक जीवन में क्षण भर के लिए भी नहीं भूल सकता। उसे गुरू को साधारण व्यक्ति नहीं समझना चाहिए। श्री गुरु अपने शिष्य के लिए ज्योतिर्मय दिव्य मूर्ति है। शिष्य, जिज्ञासु और साधक चाहे पूर्व के हों या पश्चिम के यह नियम सब के लिए अटल है। यह नियम मतभेद और पथभेद होने पर भी नहीं बदल सकता। जिसे गुरू के रूप में स्वीकार किया है उस के प्रति यह सर्वोच्च भाव रखना ही होगा।

साधक उस सीमा तक ही सद्गुरू में दिव्य मां का दिग्दर्शन कर सकता है जिस सीमा तक विद्या माया श्री सरस्वती जी की कृपा से उसे ज्ञान प्राप्ति होती है और उसी श्रेणी तक साधक आध्यात्मिक पथ पर सफलता प्राप्त करता है इसीलिए बार-बार साधक को सद्गुरू की सेवा तथा पाद पूजा का कराया जाता है। साधक जिन श्लोकों का नित्य पाठ करता है उन में पूर्ण रहस्य छिपा हुआ है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोःपदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥२॥
त्वमेव शक्ति रूपासि निर्गुणस्त्वं सनातनः ॥३॥

सद्गुरू क्या है? इन के प्रति हमें कैसा भाव रखना चाहिए? जिसका आदि है न मध्य, नाम है न गोत्र, जाति है न वर्ण, जो पुरुष है न स्त्री, वही सद्गुरू है। जो निराकार तथा निर्विकार है। जन्म-मरण और पाप-पुण्य से ... है ... ऐसे सद्गुरू देव की शरण में हैं अतः बार-बार उन को

धर्मशास्त्रों का सार

इस विजय दशमी के दिन विजयी माँ विद्या माया का पूजन परम् ब्रह्म स्वरूप सद्गुरू के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रूप में विशेष महत्व रखता है। हमने मां की पूजा अनेक प्रकार से की है। श्री गीता, ब्रह्मसूत्र, श्री मद्भागवत और रामायण आदि के पाठ से विद्यारम्भ करते हुए आज हमने माँ की अर्चना अक्षर विद्या धर्मशास्त्रों के रूप में की है। इसलिए मां की लिखित काव्य के रूप में पूजा के विषय में कुछ कहना असंगत न होगा। स्वाध्याय जिज्ञासु के साधन का विशेष अंग है। स्वाध्याय से हमारा दैनिक जीवन सुधरता है। श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवत, रामायण और महाभारत में आध्यात्मिक पथोपयोगी बहुत सी शिक्षाप्रद बातें हैं।

साराँश यह कि श्रीमद्भगवद्गीता में त्याग का पाठ विशेष रूप से दिया गया है। श्री गीता जी का वास्तविक अर्थ ही त्याग है। इस में त्याग का ही रहस्य छिपा हुआ है। त्याग द्वारा अहं और अहंकृति की भावना का नाश कर प्रभु प्राप्ति का साधन इस में वर्णित है। आसक्ति का त्याग समस्त विश्व में प्रभु के विराट स्वरूप के दर्शन का पाठ हमें श्री गीता जी ने ही पढ़ाया है।

श्री मद्भागवत से यह शिक्षा मिलती है कि इस संसार से विरक्त हो जाओ, मन को उन सब वस्तुओं से अनासक्त कर लो जो कि नश्वर हैं और केवल ईश्वर से नाता जोड़ें। श्री मद्भागवत में प्रेम अक्षर प्रधान है। ईश्वर प्रेम ही केवल प्रेम माना गया है। श्री मद्भागवत जी से हमें निर्देश मिलता है त्याग का जब कि श्री मद्भागवत से प्रभु चरणों की भक्ति से आसक्त होने को कहा गया है।

महाभारत में धर्म पालन में आबद्ध रहने के लिए कहा गया है। भले ही जीवन बलिदान करना पड़े परन्तु धार्मिक नियमों का उलंघन न हो यही महामाया का संदेश है। धर्म पालन से ही चित्त शुद्धि होती है और जीवन

पवित्र बनता है।

श्री रामायण जी में जीवन में मर्यादा पालन और आचरण का उपदेश दिया गया है। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को व्यवहारि जीवन में मर्यादा और धर्म का पालन करते हुए एक महान् आदर्श के रु में हमारे समक्ष रखा गया है। इस महाकाव्य में हमारे सामने आदर्श पति पुत्र, भाई, राजा, सेवक बड़े सुन्दर ढंग से आते हैं। श्री रामायण जी वे दिव्य पात्रों द्वारा हमें यह शिक्षा दी गई है कि हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे आदर्श बनें। इसमें आदर्श का मार्ग स्पष्ट किया गया है कि यदि कोई धर्म-परायण जीवन व्यतीत करते हुए प्रभु की प्रेम भक्ति प्राप्त करना चाहता है तो वह अपने जीवन को श्री रामायण जी में बताए गए आचरण के अनुरूप बनाये।

ब्रह्म सूत्रों में प्रत्येक वस्तु का वास्तविक कारण दिया गया है। यह मानव जीवन के परम लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं। इनमें बताया गया है कि इस जीवन का लक्ष्य है अनश्वर, अनन्त और परमानन्द तत्व की प्राप्ति ... और यह बाह्य जगत उस लक्ष्य प्राप्ति में साधन रूप है। इन साधनों द्वारा उस परम धाम की प्राप्ति करनी है जहाँ पहुँच कर पुनः मृत्यु लोक में आना नहीं होता। ब्रह्म सूत्रों का यह सार है कि धर्म, त्याग, शक्ति द्वारा परम् ब्रह्म तक पहुँच जाने के अनन्तर जीव लौट कर नहीं आता। वह सदा के लिए सच्चिदानन्द के लोक में निवास करता है।

भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने श्री गीता जी के पन्द्रहवें अध्याय में कहा है:—

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"।

मेरे उस धाम को प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य लौट कर नहीं आता। वास्तव में मनुष्य का लक्ष्य भी यही है। यह तो चरम सीमा है जिसको जान लेने के उपरान्त कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता।

जिस को प्राप्त कर कुछ और प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती।
"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः"।

यह उस परम धाम की महिमा है जिसकी प्राप्ति की हम सब इच्छा करते हैं और प्रयत्नशील हैं। हमें लक्ष्य एवं आदर्श दोनों ही धर्म ग्रन्थों से उपलब्ध हैं। लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है। श्री गीता का त्याग, भागवत की भक्ति, महाभारत का धर्म और श्री रामायण का आदर्श साधन हैं।

हमने इन महान् ग्रन्थों की चर्चा मन में लक्ष्य प्राप्ति की तीव्र लालसा जागृत करने के लिए की जिसके द्वारा साधक क्रियात्मक रूप से तन्मय हो अपने जीवन को आध्यात्मिक पथ पर साधनमय बना कर परम लक्ष्य की प्राप्ति कर सके।

प्रार्थना

नवरात्र पूजन के उपरान्त आज विजयदशमी के दिन आओ हम माँ से बुद्धि और स्मृति के प्रकाश के लिए प्रार्थना करें। स्मृति द्वारा हम सत्य के प्रति सदैव सजग रहें और अपने समस्त जीवन के आचार, विचार तथा व्यवहार को ऐसा बनायें कि वास्तविक सत्य को कभी न भूलें। वह महान् शक्ति है जिस की माया हमें भ्रान्ति में डाल देती है। सत्य को जानते हुए भी, बार-बार याद दिलाने पर भी हम क्षण भर में भूल जाते हैं और बुद्धि हमारी बाह्य जागतिक विषय वासनाओं में चक्कर काटने लगती है। इस का कारण हमारी बुद्धि पर महामाया के आवरण के अतिरिक्त कुछ नहीं। उस अवस्था में हम क्षणिक सुखप्रद भोग वासना में बंध जाते हैं और हमारी आसक्ति सांसारिक वस्तुओं के प्रति बढ जाती है। इसीलिए हम बार-बार "विद्यामाया की कृपा से ज्ञान ज्योति प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं"। हम ने देवी सूक्त में भगवती के विशद वर्णन में देखा कि देवी ही सब कुछ है। वही निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, भ्रान्ति बुद्धि और दया है। अतः हमें करबद्ध वन्दना करते हुए माँ से प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे माता ! हमें ज्योतिर्मय ज्ञान दे कर अपनी अविद्या माया से हमारी रक्षा करो"। ऐसी प्रार्थना से

द्रवित प्रसन्न वदना माँ की कृपा दृष्टि हम पर होगी। उस की कृपा दृष्टि होते ही समस्त अज्ञान, दुःख तथा शोक से हम मुक्त हो मां के दर्शन सच्चिदानन्द परम् ब्रह्म के रूप में कर सकेंगे।

इन दस दिनों में हमने माँ के उस वस्त्र के एक किनारे को ही स्पर्श करने का प्रयत्न किया है, जिसका कोई छोर नहीं। हमने मां की महिमा के अणु मात्र को समझने का प्रयत्न किया है। माँ की तो अनन्त शक्ति के कुछ अंश का ज्ञान होना भी कठिन है भले ही हम चिरकाल तक प्रतिदिन घंटो उसका गुण गान क्यों न करते रहें। समस्त धर्म ग्रन्थ और महात्मा गण अनन्त काल से माँ के गुणों की व्याख्या कर रहे हैं परन्तु फिर भी वह पूर्ण रूपेण वर्णन नहीं कर पाए। इसलिए हमें यह जान लेना होगा कि इन कुछ शब्दों द्वारा हम मां के वस्त्र का किनारा मात्र ही छू पाए हैं। जो हमने जान लिया है वह राई के दाने के बराबर है और जो अभः नहीं जान पाए हैं वह है अथाह सागर। परन्तु यह बालक का प्रेम है जो मां की ओर ले जाता है और मां का हाथ पकड़ लेता है। इन दस दिनों में जा कुछ भी हमने माँ सम्बन्ध में कहने का प्रयत्न किया वह उसको जानने का प्रयत्न नहीं था बल्कि यदि मां की कृपा हो जाए तो यह प्रयत्न एक प्रकार से माँ के चरणों में अर्पित पुष्पाँजलि है। इन नौ दिनों में कई प्रकार से पूजन किया गया है। राग, गायन, छवि शृंगार द्वारा पूजा करने के साथ–साथ माँ की दी हुई वाक शक्ति द्वारा उत्पन्न शब्दों से भी अर्चना करने का प्रयत्न किया गया है। इस विजयदशमी के महोत्सव पर मां के चरणों की पूजा इन शब्दों के साथ सम्पूर्ण करते हैं :—"माँ इस पूजा को स्वीकार कीजिए। आप प्रेम, दया, ज्ञान ज्योति और मोक्ष प्रदायिनी हैं। यह सब क्यों कहूं? मां! इतना कहना ही पर्याप्त है कि आप माता हैं। इसलिए यह हमारी तुच्छ प्रेम भेंट स्वीकार करें और आप की कृपा हम सब पर बनी रहे। माँ हम पर प्रसन्न होइए और अपनी अविद्या माया के अज्ञान को दूर कर दीजिए। हम सब साधकों को जो सद्गुरु देव के चरण कमलों में बैठे हैं आत्मज्ञान और सच्चिदानन्द की प्राप्ति

——— ॐ।।

सर्वेषां स्वस्ति र्भवतु
सर्वेषां शान्तिर्भवतु
सर्वेषां पूर्णं भवतु
सर्वेषां मंगलं भवतु
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्
असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय
ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गणेश प्रेस गुड़गावां

नवरात्र-महोत्सव

एवं

शक्ति-उपासना

22

— लेखक —

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

(शिष्य ब्रह्मलीन श्री १००८ स्वा० शिवानन्द सरस्वती जी महाराज)

सूरतगिरि बंगला, कनखल, हरिद्वार

— प्रकाशक —

योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी

(दिव्य जीवन संघ)

पो० शिवानन्दनगर,

जिला टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०) हिमालय

मूल्य] सितम्बर, १९६५ [५० पैसे

ॐ

नवरात्र-महोत्सव

एवं

शक्ति-उपासना

—लेखक—

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

(शिष्य ब्रह्मलीन श्री १००८ स्वा० शिवानन्द सरस्वती जी महाराज)

सूरतगिरि बंगला, कनखल, हरिद्वार

●

—प्रकाशक—

योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडैमी

(दिव्य जीवन संघ)

पो० शिवानन्दनगर,

जिला टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०) हिमालय

मूल्य] सितम्बर, १९६५ [५० पैसे

प्रकाशक—
योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडैमी (डिवाइन लाइफ़ सोसाइटी) के लिए श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा प्रकाशित तथा श्री देवेन्द्र विज्ञानी द्वारा, विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश, जिला देहरादून में मुद्रित।

प्रथम संस्करण — सितम्बर, सन् १९६५ -- २००० प्रति

मिलने का पता—
व्यवस्थापक, शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
पो० शिवानन्दनगर,
ज़िला टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०)
हिमालय।

आमुख

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

संसार के प्राय: सभी प्राणी बलवान्, धनवान् एवं बुद्धिमान् बनना चाहते हैं, किन्तु बनते नहीं। अत: अपने यहाँ के ऋषि-महर्षियों ने परमात्मा की अलौकिक शक्तियों की उपासना करने को बताया है। यथा, यदि किसी को बल चाहिए तो बल की अधिष्ठात्री देवी जगदम्बिका भगवती की, जिसे बुद्धि चाहिए वह बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी श्री सरस्वती की एवं जिसे धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति की इच्छा हो वह धन की अधिष्ठात्री देवी श्री महालक्ष्मी की उपासना करे।

वस्तुत: इसका तात्पर्य यह है कि समाज या राष्ट्र में इन तीन शक्तियों की अपेक्षा पड़ती ही है, जिसे लोग बलशक्ति, बुद्धिशक्ति एवं धनशक्ति शब्द से कहते हैं। यदि तीनों में एक की भी न्यूनता होती है तो समाज या राष्ट्र समुन्नत नहीं हो सकता है। आजकल भी देखने में आता है कि जो समाज या राष्ट्र इन शक्तियों से युक्त नहीं है, उसे अन्य राष्ट्र के अधीन रहना पड़ता है। अत: इसी वैज्ञानिक पद्धति को ध्यान में रख कर हमारे पूर्वजों ने उपरोक्त तीन शक्तियों की उपासना पर जोर दिया है। नवरात्र महापर्व के महोत्सव पर इन्हीं शक्तियों की आराधना वा पूजा का विधान किया गया है।

इस छोटी सी पुस्तक में भी श्री स्वामी दिव्यानन्द जी ने नवरात्र एवं शक्ति-उपासना के महत्व का वर्णन किया है। इसे पढ़कर जनता को शक्तितत्त्व का कुछ परिचय अवश्यमेव होगा। इत्यलम्

सुरतगिरि बंगला, कनखल, —स्वामी ब्रह्मानन्द वेदान्ताचार्य
दिनांक : २४ जून, १९६४

पुस्तक-समीक्षा

●

नवरात्र का महापर्व आध्यात्मिक जगत् में अपना विशेष स्थान रखता है और इस पुण्य अवसर पर सभी आस्तिक लोग किसी न किसी रूप में शक्ति की उपासना करते हैं। दूसरे शब्दों में "नवरात्र" शक्ति-उपासना का मुख्य पर्व है। इस तथ्य का दिग्दर्शन प्रस्तुत पुस्तिका में परम पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द जी ने बड़ी सरल और सुबोध शैली में कराया है, जिससे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी "नवरात्र" का महत्व समझ सकेंगे। प्रसंगवश स्वामी जी ने "पूजन-रहस्य" और "साधना-तत्त्व" पर भी वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला है, जिससे पुस्तिका की उपयोगिता बढ़ गई है। परिशिष्ट में आरती, ध्यानावली, मणि-द्वीप-यात्रा और षट्चक्रादि विषयक जो पद्यात्मक रचनाएं दी गई हैं, उनसे पाठकों को साधना-मार्ग के विशेष तत्त्वों का ज्ञान होगा और वे सच्चे जिज्ञासु बनकर आगे बढ़ने को तत्पर होंगे।

कटरा, प्रयाग
३-६-६४

—रमादत्त शुक्ल,
सम्पादक विभाग, चण्डी।

भूमिका

भोगे रोगभयं, कुले च्युतिभयं, वित्ते नृपालाद्भयं,
मानें दैन्यभयं, वले रिपुभयं, रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं, गुणे खलभयं, काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् भोग में रोग का भय, कुल (वंश) के बढ़ने में उसके नाश का भय, अधिक धन होने में राजभय (करादि से), मान में दीनता का भय, अधिक बल होने में शत्रु का भय, सद्गुण में दुर्जन का भय, शरीर में मृत्यु का भय है। यहाँ इस पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए सभी वस्तुएं भय से युक्त हैं। केवल वैराग्य ही ऐसा है जिसमें भय का नाम नहीं।

उपर्युक्त श्लोक "भर्तृहरिशतक" का है। यह अति प्राचीन होने पर तथ्य है, परम सत्य है। परा वैराग्य ही अभय और मोक्ष का कारण है। पर अब समय में परिवर्तन हो चुका है। सतयुग, त्रेता और द्वापर युग बीत चुके। यह कलियुग है। प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में महान् परिवर्तन घटित हो चला है। आज के युग में मानव को प्रलोभित करने के लिए भोग-सामग्रियां पद-पद पर विद्यमान हैं। "काम, काम, काम" की चिल्लाहट मची हुई है। लोभ और स्वार्थ ने पूरा-पूरा आधिपत्य जमा रखा है। मानव-मानव में, भाई-भाई में, पड़ोसी-पड़ोसी में, ग्राम-ग्राम में, प्रान्त-प्रान्त में तथा राष्ट्र-राष्ट्र में वैमनस्य व रागद्वेष फैल रहा है। एक-दूसरे को हड़पना चाहता है। अनाचार,

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

नवरात्र महोत्सव
एवं
शक्ति उपासना

नवरात्र महोत्सव का आदि कारण

प्राचीन काल में भगवती दुर्गा देवी ने दैत्यराज महिषासुर को मार कर विजय प्राप्त की थी। यह नवरात्र महोत्सव उसी के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी एक कथा प्रचलित है कि भण्ड दैत्य और उसकी सेना के साथ श्री ललितादेवी ने नौ दिन और रात्रि तक लगातार युद्ध किया। दसवें दिन इस युद्ध की समाप्ति हुई जिसमें देवी ने असुरों पर विजय प्राप्त की। आश्विन नवरात्र के अन्त में विजय दशमी का उत्सव देवी के इस विजय की स्मृति में ही मनाया जाता है।

यह नवरात्र महोत्सव वर्ष में चार बार—चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ के महीने में—आता है। आषाढ़ और माघ की पूजा गुप्त कही गई है। चैत्र और आश्विन की पूजा प्रसिद्ध है जो सारे भारत में प्रचलित है। यह उत्सव शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को आरम्भ हो कर उसी पक्ष की नवमी को समाप्त होता है। यह भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न रूप से मनाया जाता है, किन्तु उन सबों का एकमात्र उद्देश्य महामाया या भगवती को प्रसन्न करना ही है

देवी अर्थात शक्ति तत्त्व की व्याख्या

देवी तत्त्व की यदि व्याख्या की जाय तो यही कहा जायगा कि शक्ति ही सब कुछ है। जो कुछ भी हम इस स्थूल जगत् में देखते हैं, वह ब्रह्म की पराशक्ति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। उसी को आद्याशक्ति और परातत्त्व भी कहते हैं। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या परब्रह्म और पराशक्ति में कोई अन्तर है और यदि है तो वह क्या है ? विद्वान् पुरुषों का कथन है कि परब्रह्म और उसकी परमा शक्ति, जिसे हम माया कहते हैं, एक ही है दो नहीं। व्यवहार में दो कहे जाते हुए भी वे एक हैं। बुद्धि के भ्रम से ही यह भेद प्रतीत होता है। यह भेद वैसे ही है जैसा कि एक ही सिक्के के दो पहलू। शक्ति को अनुभव किये बिना ब्रह्म का अनुभव नहीं किया जा सकता है। शक्ति (देवी) को जान लेने पर ब्रह्म अपनें आप जाना जाता है। यह शक्ति व्यक्त और अव्यक्त को मिलाने वाली एक सूक्ष्म श्रृंखला है। ब्रह्म और उसकी शक्ति माया ऐसे अभिन्न हैं, जैसे कि पुष्प और उसकी सुगन्धि। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति पृथक् नहीं होते उसी प्रकार ब्रह्म और उसकी संचालिका शक्ति भिन्न नहीं है। पुष्प का चिन्तन करते ही उसकी सुगन्धि का और अग्नि का चिन्तन करते ही उसकी उष्णता का आप ही भान हो जाता है। यदि दाहिका शक्ति को अग्नि से अलग कर दिया जाय तो वह अग्नि अग्नि नहीं कहला सकती। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म और माया शक्ति को अलग नहीं किया जा सकता। वे साथ रह कर ही संसार में व्यक्त होते हैं। पूज्यपाद भगवान् शंकराचार्य का भी यही मत है। वे अपने सर्वमान्य ग्रन्थ "सौन्दर्य लहरी" में कहते हैं:—

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

त्रिपुरसुन्दरी है। यही श्री विद्या, ब्रह्म विद्या, वेदों की माता और त्रिभुवन की जननी है। यथा—

"प्रातःकाले कुमारी कुसुमकुमकुमा जाप्यमालां जपन्तीं
मध्याह्ने प्रौढ़रूपा विकसितवदना चारुनेत्रा विशाला
संध्यायां वृद्धरूपा गलितकुचयुगा मुण्डमालां वहन्ती
सा देवी वेदमाता त्रिभुवनजननी सुन्दरी मां पुनातु।"

यही त्रिविधरूपा गायत्री, सावित्री और सरस्वती है। यथा—

"हंसारूढा स्थिता देवी गायत्री ब्रह्मरूपिणी।
मध्याह्ने देवि सावित्री सायं सन्ध्या सरस्वती॥

इस विषय का विस्तृत वर्णन श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विद्वद्वरिष्ठ कनखल बंगला मठाधीश १०८ श्री स्वामी महेश्वरानन्द महामण्लेश्वर महाराज ने अपनी पुस्तक **"गायत्री मीमांसा"** में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। उसका उद्धरण यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा :

"एक ही भगवती गायत्री देवी प्रातः आदि कालों के भेद से तीन प्रकार (तीन नाम एवं तीन आकार) की कही जाती है—प्रातःकाल में गायत्री नाम से, मध्याह्न काल में सावित्री नाम से तथा सायंकाल में सरस्वती नाम से कही जाती है। (ये तीनों नाम एक ही वस्तु के काल-भेद से हो गये हैं, जैसे एक ही मनुष्य के काल-भेद से बालक, युवा एवं वृद्ध—ये तीन नाम हो जाते हैं।) यह व्यास का वचन है। एवं विभिन्न क्रियाओं के भेद से भी यह तीन नाम से कही जाती है—गायत्री-मन्त्र के जप-ध्यान-परायण भक्तों के प्राणों का परित्राण करने से उसका गायत्री नाम कहा गया है; सवितृ-मण्डल के द्योतन करने एवं जगत् का प्रसवन (उत्पादन) करने से वही सावित्री नाम से

कही जाती है। वेदादि वाणी स्वरूप होने से उसका सरस्वती नाम पड़ा है। इसलिये साधक भक्त प्रातःकाल में गायत्री के साकार स्वरूप का ध्यान इस प्रकार करते हैं: प्रातःकाल में गायत्री ब्रह्माणी है, सूर्य मण्डल के मध्य में अवस्थित है, रक्तवर्णा एवं द्विभुजा है, करद्वय में अक्ष-सूत्र एवं कमण्डलु धारण किया है, हंसासन पर समारूढा (बैठी हुई) है, ब्रह्म दैवत्या है अर्थात् ब्रह्म देवता रूपा है, कुमारी है, ऋग्वेद की अधिष्ठात्री रूप से कही जाती है—ऐसा उसका ध्यान प्रातः समय में करना चाहिए। मध्याह्न समय का ध्यान इस प्रकार है—मध्याह्न में सूर्यमण्डल मध्यवर्ती, कृष्ण वर्ण वाली, शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाली, गरुड़ पर बैठी हुई युवती वैष्णवी—विष्णु देवता रूपा, यजुर्वेद की अधिष्ठात्री रूप से एवं सावित्री नाम से वह कही जाती है, ऐसा मध्याह्न समय ध्येय है। सायं समय का ध्यान इस प्रकार है—सायंकाल में आदित्यमण्डल के मध्य में अवस्थित, शुक्लवर्णा एवं चतुर्भुजवाली, त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र को चारों हाथों में धारण करने वाली, वृषभ के आसन पर अरूढ़ा, वृद्धा रुद्राणी रुद्र देवता रूपा समावेद की अधिष्ठात्री रूप से एवं सरस्वती नाम से कही जाती है, ऐसी सायं समय में ध्येय है।"

प्रायः प्रश्न किया जाता है कि शक्ति की उपासना किस रूप में करनी चाहिए। इसके लिए कहा है :

"स्त्रीरूपेण यजेत् देवीं, पुंरूपेणैव चिन्तयेत् ।
ध्यायेत निष्कलं नित्यं, सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥

तात्पर्य यह है कि स्त्री, पुरुष व पण्ड तीनों रूप उसी के हैं और वह तीनों रूपों से परे भी है। जैसा कहा है :

"न बाला न च त्वं वयस्का न वृद्धा,
न च स्त्री न षण्ढः पुमानेव न त्वं
न च त्वं सुरो नासुरो ना नरो वा
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।
न मीमांसका नैव काणाद तर्का
न सांख्या न योगा न वेदान्तवादाः।
न देवा विदुस्ते निराकारभावं
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।

भाव यह कि जिस महाशक्ति के वास्तविक स्वरूप को देवगण (ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि) भी नहीं जान सकते उसकी महिमा का पूर्ण रूप से वर्णन कर सकना असम्भव ही है। पर, हाँ, भक्त उसे सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार किसी भी रूप में पूज सकते हैं। यदि आप (पुंरूप में) विष्णु की पूजा करेंगे तो लक्ष्मी की भी पूजा सर्वप्रथम होगी। इसी भाँति यदि शंकर की पूजा करें तो भी गौरी की पूजा सर्वप्रथम होगी ही। लोक में भी राधाकृष्ण, गौरीशंकर, सीताराम आदि युगल नाम प्रसिद्ध हैं। ऐसी स्थिति में शक्ति-पूजा के सम्बन्ध में स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को सर्वथा दूर कर सच्चिदानन्द लक्षण की भावना रखते हुये देवी की आराधना करनी चाहिए, क्योंकि तीनों रूपों में उसी महाशक्ति का लीला विलास है।

शक्ति उपासना की आवश्यकता

भगवान् शंकर पार्वती को तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं : हे देवी ! प्राणीमात्र के हितार्थ तथा विशेषकर कलियुग के जीवों के लिए वेद शास्त्र (निगम) के समान ही मैंने आगम शास्त्र की रचना पहले से ही कर दी है जिसमें वेदों का ही सार है, किन्तु इसमें एक

विशेषता यह है कि जहाँ वैदिक मार्ग द्वारा मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति को लौकिक विषय–भोगों का त्याग करना पड़ता है वहाँ इस आगम शास्त्र के अनुयायी के लिए इस शास्त्र में प्रेय (भोग) और श्रेय (मोक्ष) दोनों को साथ-साथ प्राप्त करने का सुगम मार्ग बतलाया गया है। कहा है :

"यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥"

यह आगम शास्त्र एक अनूठा शास्त्र है जिसमें तुच्छ से तुच्छ वस्तु से लेकर उत्तम से उत्तम वस्तु का तथा निकृष्ट से निकृष्ट से लेकर उत्कृष्ट कार्य का सुन्दर वर्णन मिलता है। इसके द्वारा चारों वर्णों के लोग अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का अनुसरण करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करने में पूर्ण सफल हो सकते हैं। इसमें बताये हुए अनुष्ठान ऐसे सुगम व सरल हैं कि मनुष्य सात्त्विक, राजसिक व तामसिक किसी भी प्रकृति का क्यों न हो, वह इनसे यथेच्छ लाभ प्राप्त कर सकता है। अन्य शास्त्रों के अनुसरण से ऐसा कर सकना अतीव दुष्कर है। इन कारणों से यदि इसे पूर्ण विधि–शास्त्र नाम दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस आगम शास्त्र को मन्त्र–शास्त्र व शक्ति शास्त्र भी कहते हैं।

गीता में भी भगवान् कृष्ण के कथन, "योगः कर्मषु कौशलम्" के अनुसार कर्मों में कुशलता ही योग है। यही बुद्धि योग है। प्रकृति माता द्वारा रचित कोई भी पदार्थ अच्छा या बुरा नहीं है। उनकी अच्छाई या बुराई तो उनके व्यवहार पर निर्भर है। दूध को ही लीजिए। यह एक उत्तम पदार्थ है, परन्तु यदि वह नमक मिला कर

अथवा अपनी पाचन-शक्ति से अधिक मात्रा में पिया जाय तो क्या वह हानिकारक नहीं होगा। संखिया विष है। यदि उसका एक कण भी खा लिया जाय तो उसका परिणाम प्राणघातक ही होगा। परन्तु यदि कोई चतुर वैद्य इसी संखिया को संशोधन कर उसे किसी पौष्टिक पदार्थ के साथ खिलावे तो वही संखिया पुष्टिवर्द्धक और शक्तिदायक सिद्ध होगा। दूध वही है और संखिया वही है, पर व्यवहार-भेद के कारण दूध जो अच्छा है वह बुरा और संखिया (विष) जो बुरा है, वह अच्छा बन जाता है। यही बात प्रत्येक वस्तु पर लागू होती है। विधिवत् प्रत्येक वस्तु ग्राह्य है और विधिविहीन प्रत्येक वस्तु त्याज्य है।

शक्ति के बिना कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं हो सकता। प्रत्येक अणु-परमाणु में अधिदैवत्त शक्ति है, वही उसका संचालन करती है और उस वस्तु का धर्म कहलाती है। उदाहरणार्थ अग्नि में उष्णता, प्रकाश और दाहकता तथा पुरुष में पुंसत्व उसका धर्म है। इस शक्ति के बिना अग्नि को अग्नि और पुरुष को पुरुष नहीं कह सकते।

सारा संसार किसी न किसी रूप में शक्ति का उपासक है। आज का वैज्ञानिक भी इसे इनर्जी, नेचर आदि के नामों से स्वीकार करता है। शक्ति की उपासना बहिर्मुखी हो सकती है और अन्तर्मुखी भी। साधना के बाह्य रूप अनेक हो सकते हैं, पर साध्य वस्तु (शक्ति) एक ही है। सारी शक्तियां आत्मा में केन्द्रित हैं। इस आत्मशक्ति को जागृत करने पर ही इहलौकिक तथा परलौकिक सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं।

शक्ति उपासना का आध्यात्मिक रहस्य

शक्ति (देवी) की उपासना से लौकिक वैभव के अतिरिक्त ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। लोक-व्यवहार में भी यह देखने में आता है कि बच्चा पिता की अपेक्षा माता को अधिक चाहता है, क्योंकि माता

स्वभावत: सहृदय और वात्सल्यमयी होती है तथा अपने बच्चे की आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखती है। आध्यात्मिक मार्ग में भी साधक का पिता शिव की अपेक्षा माता दुर्गा के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

परंपरा से प्राप्त हमारे धार्मिक कृत्यों—पूजा, व्रतादि—के अनेक अभिप्राय: हैं। साधारण अर्चा-पूजा के अतिरिक्त इनमें आध्यात्मिक गुप्त रहस्य भी भरे रहते हैं। बाहरी रूप से तो यह नवरात्र महोत्सव एक प्रकार का विजयोत्सव है जो देवी के राक्षसों को मार कर उन पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है; परन्तु आध्यात्मिक साधन-मार्ग में प्रत्येक तीन-तीन दिनों में क्रमश: महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का पूजन करना अपना एक विशेष महत्व रखता है। इसमें मनुष्य के लिए क्रमोन्नति कर जीवत्व से शिवत्व

अथवा अपनी पाचन-शक्ति से अधिक मात्रा में पिया जाय तो क्या वह हानिकारक नहीं होगा। संखिया विष है। यदि उसका एक कण भी खा लिया जाय तो उसका परिणाम प्राणघातक ही होगा। परन्तु यदि कोई चतुर वैद्य इसी संखिया को संशोधन कर उसे किसी पौष्टिक पदार्थ के साथ खिलावे तो वही संखिया पुष्टिवर्द्धक और शक्तिदायक सिद्ध होगा। दूध वही है और संखिया वही है, पर व्यवहार-भेद के कारण दूध जो अच्छा है वह बुरा और संखिया (विष) जो बुरा है, वह अच्छा बन जाता है। यही बात प्रत्येक वस्तु पर लागू होती है। विधिवत् प्रत्येक वस्तु ग्राह्य है और विधिविहीन प्रत्येक वस्तु त्याज्य है।

शक्ति के बिना कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं हो सकता। प्रत्येक अणु-परमाणु में अधिदैवत शक्ति है, वही उसका संचालन करती है और उस वस्तु का धर्म कहलाती है। उदाहरणार्थ अग्नि में उष्णता, प्रकाश और दाहकता तथा पुरुष में पुंसत्व उसका धर्म है। इस शक्ति के बिना अग्नि को अग्नि और पुरुष को पुरुष नहीं कह सकते।

सारा संसार किसी न किसी रूप में शक्ति का उपासक है। आज का वैज्ञानिक भी इसे इनर्जी, नेचर आदि के नामों से स्वीकार करता है। शक्ति की उपासना बहिर्मुखी हो सकती है और अन्तर्मुखी भी। साधना के वाह्य रूप अनेक हो सकते हैं, पर साध्य वस्तु (शक्ति) एक ही है। सारी शक्तियां आत्मा में केन्द्रित हैं। इस आत्मशक्ति को जागृत करने पर ही इहलौकिक तथा परलौकिक सिद्धियां प्राप्त की जा सकती है।

शक्ति उपासना का आध्यात्मिक रहस्य

शक्ति (देवी) की उपासना से लौकिक वैभव के अतिरिक्त ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। लोक-व्यवहार में भी यह देखने में आता है कि बच्चा पिता की अपेक्षा माता को अधिक चाहता है, क्योंकि माता

स्वभावतः सहृदय और वात्सल्यमयी होती है तथा अपने बच्चे की आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखती है। आध्यात्मिक मार्ग में भी साधक का पिता शिव की अपेक्षा माता दुर्गा के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

परंपरा से प्राप्त हमारे धार्मिक कृत्यों—पूजा, व्रतादि—के अनेक अभिप्राय: हैं। साधारण अर्चा-पूजा के अतिरिक्त इनमें आध्यात्मिक गुप्त रहस्य भी भरे रहते हैं। बाहरी रूप से तो यह नवरात्र महोत्सव एक प्रकार का विजयोत्सव है जो देवी के राक्षसों को मार कर उन पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है; परन्तु आध्यात्मिक साधन-मार्ग में प्रत्येक तीन-तीन दिनों में क्रमशः महाकाली, महा-लक्ष्मी तथा महासरस्वती का पूजन करना अपना एक विशेष महत्व रखता है। इसमें मनुष्य के लिए क्रमोन्नति कर जीवत्व से शिवत्व प्राप्त करने का संकेत है।

मानव जीवन का लक्ष्य है अपने जीव भाव को हटा कर शिव भाव प्राप्त करना। इसके लिए साधक को सर्व-प्रथम अपने अन्तःकरण से दुर्गुणों, अपवित्रताओं तथा आसुरी भावों को हटा कर उनके स्थान में सद्गुणों तथा शुद्ध सात्त्विक भावों को भरना पड़ेगा। इस प्रकार तमोगुण के निष्कासन तथा सतोगुण की अभिवृद्धि से साधक के शुद्ध हृदय में शनैः शनैः ज्ञानोदय होता है। किन्तु इसके लिए दृढ़ इच्छा शक्ति और अथक प्रयास की अपरिहार्य आवश्यकता है।

अब यह देखना है कि नवरात्र के पहले तीन दिनों में मातृशक्ति की उपासना दुर्गा या रौद्ररूपा काली के रूप में किस प्रकार की जाती है। हम दुर्गा देवी से अपनी मलिनता, दुर्गुण और दोषों को नष्ट करने की प्रार्थना करते हैं। इस पर दुर्गा देवी हमारे भीतर आसुरी वृत्ति रूप जो असुरगण हैं, उनसे संग्राम कर उन्हें समूल नष्ट कर डालती है और हमें भयंकर अन्ध कूपों और आपत्तियों से बचाती है। इस प्रकार

नवरात्र के प्रथम तीन दिनों में जो महाकाली के पूजन का विधान है, वह हमारे कुसंस्कारों, हमारी दुर्वासनाओं तथा आसुरी वृत्तियों के साथ संग्राम कर उन्हें नष्ट कर डालने की प्रथम स्थिति का ही द्योतक है। अब जब एक बार हमारी आसुरी वृत्तियों की इतिश्री हो चुकी तो हमें उनके स्थान में दैवी सम्पत्ति को—श्रीमद्भगवद्गीता के १६वें अध्याय में वर्णन किये गये सात्विक गुणों को—भरना पड़ेगा। यदि इन सद्गुणों की वृद्धि यथार्थ रूप से न हुई तो सम्भव है कि हमारी पुरानी आसुरी वृत्तियां फिर से हम पर आक्रमण करने में समर्थ हो जावें। अतः सद्गुणों की वृद्धि बहुत ही सावधानी पूर्वक करनी चाहिए। नवरात्र के मध्य के तीन दिनों में जो श्री महालक्ष्मी का पूजन किया जाता है, वह इसी साधना-स्थिति का द्योतक है। वह महालक्ष्मी अपने भक्तों को दैवी सम्पत् रूप अक्षुण्ण द्रव्य प्रदान करती है। वह सात्विक शक्ति है, तुष्टि है, पुष्टि है। साधक में जब आसुरी वृत्तियां क्षीण होतीं तथा सात्विक गुणों की वृद्धि होती है, तो वह ज्ञान प्राप्त करने के पूर्णतः योग्य बन जाता है। इसी स्थिति से ब्रह्मज्ञानस्वरूपिणी श्री महासरस्वती का पूजन आरम्भ होता है। उसकी दिव्य वीणा मधुर ध्वनि करती है। मातृ श्री का श्वेत वस्त्रालंकार आत्मज्ञान का द्योतक है। नवरात्र के अन्तिम तीन दिनों में जो महासरस्वती का पूजन किया जाता है, वह नादब्रह्म व आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रशस्त है। भगवती श्री सरस्वती की कृपा से विशुद्ध ज्ञान के द्वारा जीव अपने जीव भाव को त्याग कर जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है, वह सत्-चित्-आनन्द रूप हो जाता है, सोऽहंभाव में लीन हो जाता है। यही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। यही जीव की विजय है। यह नवरात्र के अन्तिम दसवें दिन की विजयदशमी के महोत्सव का रहस्य है। आध्यात्मिक मार्ग में उपर्युक्त तीनों स्थितियों को पार करने पर ही पूर्ण सफलता मिल सकती है, अन्यथा नहीं। नवरात्र के तीन-

तीन दिनों में क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की यह पूजन-पद्धति भारत के दक्षिण प्रदेश में विशेष प्रचलित है, सम्भवतः अन्य प्रदेशों में भी यह प्रचलित हो ।

पूजन–विधि

पूजा तीन प्रकार की कही गयी है—अपरा (कनिष्ठ), परा-अपरा (मध्यम) और परा (उत्तम)। अपरा पूजन को पंचोपचार पूजन भी कहते हैं। इसमें इष्ट देवता की मूर्ति या चित्र की सोपचार पूजा की जाती है। मुख्य उपचार पांच हैं—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य। ये क्रमशः पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल—इन पांच महाभूतों के प्रतीक हैं। वास्तव में यह पंचतत्त्वात्मक प्रकृति का ही स्थूल तत्त्वों द्वारा पूजन है। यह मन की चंचल वृत्तियों को विपयों से हटा कर एकाग्र करने की प्राथमिक साधना है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

श्रवण (अपने इष्टदेव के गुणों का सुनना), कीर्तन (उसके गुणों और नामों का कीर्तन करना), स्मरण (अपने इष्टदेवता का स्मरण करना), पादसेवन (अपने इष्टदेवता की उपासना करना), वन्दन (अपने इष्टदेवता को नमस्कार करना), दास्य (अपने इष्टदेव की स्वामी भाव से सेवा करना), सख्य (अपने इष्टदेवता के प्रति मित्र भावना रखना) और आत्म-निवेदन (मन, वचन और कर्म से अपने को अपने इष्टदेवता के समर्पण कर देना)—ये भक्ति के नौ भाव वतलाये गये हैं। इन सवको उपासना के विभिन्न अंग मान कर इनका अभ्यास करना चाहिए। अज्ञानावस्था में वालक सर्वप्रथम मिट्टी, लकड़ी या धातु के हाथी, घोड़े आदि खिलौनों को वास्तविक हाथी, घोड़े मानकर उनमें प्रीति करता है, परन्तु वड़ा होने पर प्रत्यक्ष हाथी, घोड़े देख-देख

कर उनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो फिर उसकी उन कृत्रिम हाथी, घोड़ों में अभिरुचि नहीं रह जाती। ठीक इसी प्रकार प्रारम्भिक श्रेणी की उपासना यह अपरा पूजा है। इसके आगे दूसरी श्रेणी में परा-अपरा पूजा है। यह यन्त्र-पूजा है। यन्त्र ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। इसमें शक्ति सहित शिव तथा अन्य देव-देवियों का पूजन किया जाता है। इस पूजा में मनुष्य के ज्ञान का स्तर अधिक उन्नत हो जाता है। वह यह समझने लगता है कि यह संसार तथा सारे भौतिक पदार्थ ब्रह्ममय हैं। इसी भाव से वह इस द्वितीय श्रेणी की परा-अपरा उपासना को ग्रहण कर उसका अनुष्ठान करता है। इसके परे परा पूजा है। यह मानसिक आत्मपूजा है। इसमें सभी उपचार मानसिक ही होते हैं। ज्ञान की प्रधानता होती है। इस अवस्था में मनुष्य अपने जीव भाव को हटा कर आत्मभाव में स्थित हो जाता है। परा-अपरा एवं परा पूजा का विधान गुरु से सीखकर ही उसका अनुष्ठान करना चाहिए।

उपासना क्रम के अनुरूप ही उपासक अथवा साधक भी तीन श्रेणी के होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। द्वितीय और तृतीय श्रेणी के साधकों को गुरु-दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही गुरूपदिष्ट विधि से परा-अपरा अथवा परा पूजा का अनुष्ठान करना चाहिए। वैसे तो सभी साधकों को गुरु-दीक्षा लेना आवश्यक है, पर जब तक ऐसा अवसर प्राप्त न हो सके तब तक निम्न कोटि के साधकों को प्रेम एवं श्रद्धापूर्वक अपरा पूजा तो करनी ही चाहिए। नित्य न बन सके तो नवरात्र के विशेष पर्व पर तो अवश्य ही करें।

मूर्ति-पूजा पाषाण-पूजा नहीं है, जैसा कि कई लोग मानते हैं। इसमें चेतन तत्त्व की पूजा होती है। साधक अपने मन की भावनाओं के द्वारा उस मूर्ति में अपने इष्टदेव का साक्षात्कार करता है। प्रत्येक मनुष्य में गुप्त दैवत विद्यमान है। वह शक्ति आतिशी शीशे की तरह

ईश्वर ही परम ज्योति है। साधक कहता है—'हे भगवन्! आप स्वयं ज्योति हैं, आप विश्व-ज्योति हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि में आप ही का प्रकाश व्याप्त है। अविद्या रूपी अन्धकार को हटाकर मुझे अपने दिव्य प्रकाश से प्रकाशित कीजिये।' मेरी बुद्धि विकसित हो, यह भाव है।

कपूर—आरती के समय जो कपूर जलाया जाता है, उसका भाव है कि हमारा व्यक्तिगत स्वार्थ कपूर की भाँति उड़ जाय और जीव शिव में मिलकर एक हो जाय।

श्रेष्ठ व उत्तम कोटि के साधक अपने गुरु के बतलाये हुए पंच-मकारादि साधनों द्वारा सम्पूर्ण उपचारों व मन्त्रों के सहित देवी का पूजन नवरात्र के नौ दिनों में विशेष उत्साह व धूमधाम के साथ करते हैं; परन्तु जो लोग दीक्षित नहीं हैं, उन्हें भी चाहिये कि गन्ध, कुंकुम, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, फल, ताम्बूल आदि उपचार अपनी शक्ति के अनुसार प्रेम, भक्ति और श्रद्धा के साथ भगवती को अर्पण करें। नीराजन (आरती) के पश्चात् प्रार्थना कर क्षमा मांगें।

क्षमा-प्रार्थना

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥

सगुण पूजा-अर्चना में धन की आवश्यकता होती है; पर विश्वास रखना चाहिये कि पूजा के निमित्त जो धन व्यय होगा, उसका दुगुना-चौगुना धन माता आपको प्रदान करेगी। यह माता का ही आदेश है—"ददाति प्रतिगृह्णाति"। अतएव साधक को चाहिये कि नवरात्र जैसे सुअवसरों पर धन व्यय करने में कृपणता न दिखाये।

सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।"

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, कन्या-पूजन में वर्ण अथवा जाति
ा भेद नहीं है। कामना-भेद से सब वर्ण की कन्यायें पूजनीय हैं—
था ब्राह्मणी (सब कामों में), क्षत्राणी (जय के लिये), वैश्य कन्या
लाभ के लिए) और शूद्र कन्या (सन्तान के लिये)। दो वर्ष से
लह वर्ष की आयुवाली तथा जब तक ऋतु का उद्‌गम न हो,
ारी कन्या पूजने योग्य है। ध्यान रहे कि हीनाङ्गी, कानी, लूली,
ड़ी, अन्धी, कुरूपा तथा कुष्ठ रोग से पीड़ित कन्या पूजने में
ात है।

स्तोत्र (श्रीदुर्गासप्तशती) पाठ

यों तो देवी के सभी छोटे-मोटे स्तोत्र पठनीय और फलप्रद हैं;
उन सब में "श्रीदुर्गासप्तशती" का अपना एक विशेष स्थान है।
तन्त्र शास्त्र का एक अतीव महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें सात सौ
क हैं। आजकल प्रायः सभी अनुष्ठान इसी के द्वारा किये जाते हैं।
ान्थ में परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती महामाया के स्वरूप, स्वभाव,
ो उपासना, स्तुति तथा दिव्य लीलाओं का विशद वर्णन है
तीन चरित्र हैं। प्रथम चरित्र में महाकाली, द्वितीय चरित्र
ाक्ष्मी तथा तृतीय चरित्र में महासरस्वती के अवतारों की कथाउ
र्णन है। इसमें योग तथा साधकों के आध्यात्मिक जीवन प
पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ कर्म, भक्ति
ज्ञान की त्रिवेणी है। यह ग्रन्थ बहुत ही प्राचीन है और भार
ना ही मान्य है जितना कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता। भगवद्‌गीता मे
म् श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म, भक्ति और ज्ञान—इन तीनों का
ा अवश्य दिया था, किन्तु अन्त में उसको कर्म में ही प्रवृत्त किया।

अर्जुन को केवल राज्य की प्राप्ति हुई। इस विचार से यदि देखा जाय तो गीता एक प्रवृत्ति प्रधान ग्रन्थ ही माना जायगा। परन्तु "**श्रीदुर्गासप्तशती**" ग्रन्थ में तो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के उदाहरण विद्यमान हैं। इसमें श्री मेधा ऋषि के उपदेशानुसार महामाया भगवती की उपासना-आराधना कर राजा सुरथ ने तो स्थिर राज्य प्राप्त किया तथा समाधि नामक वैश्य ने मोक्ष। अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार दोनों ने क्रमशः भुक्ति और मुक्ति प्राप्त की। यही इस ग्रन्थ की विशेषता है।

सारे भारत में सनातनधर्मी हिन्दुओं के घरों में इस ग्रन्थ का पठन-पाठन होता रहता है। जो पढ़े लिखे हैं, वे तो स्वयं इसका पाठ कर लेते हैं, पर जो स्वयं ऐसा नहीं कर सकते, उन्हें भी चाहिए कि नवरात्र के दिनों में इसका पाठ किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा अवश्य करवायें। इससे अभ्युदय और श्रेयस् दोनों की प्राप्ति होती है। पाठ के अन्त में होम और ब्राह्मण-भोजन भी कराना आवश्यक है।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित हो कर ही ग्रन्थों की रचना की थी। 'अधिकारी-भेद' को सदा उन्होंने दृष्टिगत रखा। इस ग्रन्थ के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। जो साधकगण इस बृहद् ग्रन्थ का समूचा पाठ करने में असमर्थ हैं, उनके लिए उन्होंने इस ग्रन्थ का सार निचोड़ कर "**सप्तश्लोकी दुर्गा**" नामक स्तोत्र के रूप में अलग कर दिया। प्रेम, भक्ति और श्रद्धापूर्वक इस लघु स्तोत्र का पाठ करने से भी साधकों को वही लाभ होता है जो "श्रीदुर्गासप्तशती" के पाठ से होता है। पाठकों के लाभार्थ यह लघु स्तोत्र यहाँ दिया जा रहा है।

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

ओ३म् अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः,

अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ओं ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥२॥

सर्वमङ्गलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥६॥

सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥७॥

परिशिष्ट

आरती

जै अम्बे गौरी, मैया जै श्यामा गौरी।
तुमको निशिदिन ध्यावत, तुमको निशिदिन ध्यावत
ब्रह्मा हर शिव री॥ जै अम्बे……

मांग सिंदूर विराजत, टीको मृगमद को, मैया टीको मृगमद को।
उज्ज्वल से दोऊ नैना, उज्ज्वल से दोउ नैना
चन्द्रवदन नीको॥ जै अम्बे……

कनक समान कलेवर, रक्ताम्बर राजे, मैया रक्ताम्बर राजे।
रक्तपुष्प की माला, रक्तपुष्प की माला,
कण्ठन पर छाजे॥ जै अम्बे……

केहरि वाहन राजत, खड्ग खप्पर धारी, मैया खड्ग खप्पर धारी।
सुर नर मुनि जन सेवत, सुर नर मुनि जन सेवत,
तिनके दुःख हारी॥ जै अम्बे……

कानन कुण्डल शोभित, नासा गजमोती, मैया नासा गजमोती।
कोटिक चन्द्र दिवाकर, कोटिक चन्द्र दिवाकर,
सम राजत ज्योती॥ जै अम्बे …

चौंसठ योगिनि गावत, निरत करत भैरू, मैया निरत करत भैरू।
बाजत ताल मृदंगा, बाजत ताल मृदंगा,
अरु बाजत डमरू॥ जै अम्बे……

भुजा चार अति शोभित, वर अभय धारी, मैया वर अभय धारी।
मनवांछित फल पावत, मनवांछित फल पावत,
सेवत नर नारी ॥ जै अम्बे……
कंचन थाल विराजत, अगर कपूर की वाती,
मैया अगर कपूर की वाती।
मालकेत में राजत, मालकेत में राजत,
निसदिन मदमाती ॥ जै अम्बे …..
अम्बे जी की आरति, जो कोई नर गावे, मैया जो कोई नर गावे
कहत 'शिवानन्द स्वामी', कहत 'शिवानन्द स्वामी'
मनवांछित फल पावे ॥ जै अम्बे……

सुमधुर संकीर्तन ध्वनियां

जै गणेश जै गणेश जै गणेश पाहि माम्।
श्री गणेश श्री गणेश श्री गणेश रक्ष माम् ॥१॥
जै सरस्वती जै सरस्वती जै सरस्वती पाहि माम्।
श्री सरस्वती श्री सरस्वती श्री सरस्वती रक्ष माम् ॥२॥
जै गुरु शिव गुरु हरि गुरु राम।
जगद्गुरु परमगुरु सद्गुरु श्याम ॥३॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥४॥
गंगा रानी गंगा रानी गंगा रानी पाहि माम्।
भागीरथी भागीरथी भागीरथी रक्ष माम् ॥५॥

ओ३म शक्ति ओ३म् शक्ति ओ३म् शक्ति ओ३म् ।
आदि शक्ति महा शक्ति परा शक्ति ओ३म् ॥६॥
ओ३म् शक्ति ओ३म शक्ति ओ३म शक्ति ओ३म् ।
ब्रह्म शक्ति विष्णु शक्ति शिव शक्ति ओ३म् ॥७॥
ओ३म् शक्ति ओ३म् शक्ति ओ३म् शक्ति ओ३म्।
इच्छा शक्ति क्रिया शक्ति ज्ञान शक्ति ओ३म् ॥८॥
राजराजेश्वरी राजराजेश्वरी राजराजेश्वरी पाहि माम् ।
त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरसुन्दरी रक्ष माम् ॥९॥
जै जगजननी पोषनभरनी, जै जै जै सुख सम्पत करनी ।
जै जै जै दलदानवदलनी, जै जै जै कटु पाप कतरनी ॥१०॥
मां दुर्गे जै मां काली, जै लक्ष्मी सन्तन प्रतिपाली ॥११॥
म्बे अम्बे अम्बे अम्बे, अम्बे अम्बे अम्बे अम्बे ।
म्बे अम्बे अम्बे अम्बे, तू सब जग की है अवलम्बे ॥१२॥
ादिशक्ति महामाया तू, जगकारण जगदम्बा तू ।
ीव चराचर ही में तू, जहाँ देखूं वहाँ तू ही तू ॥१३॥
ो३म् नमः शिवाय, ओ३म् नमः शिवाय,
ो३म् नमः शिवाय, ओ३म् नमः शिवाय ॥१४॥
शव शिव शिव शिव शिवाय नमः ओ३म् ।
र हर हर हर हराय नमः ओ३म् ॥१५॥

ध्यानावली

ाथ में त्रिशूल चक्र खड्ग आदि आयुध हैं,
गल मांहि जिन एक मुण्डमाल धारी है ।

लोचन विशाल लाल क्रूर विकराल मुख,
मर्घट विहार करे प्रेत असवारी है ।
दुष्ट दल दानव के खोज को खपाय पुनि,
सन्तन सहाय करे भक्त हितकारी है ।
सोई मतवाली महाकाली सन्त प्रतिपाली,
'दिव्य' कहै रैन दिन मेरी रखवारी है ॥१॥

सप्तशति ग्रन्थ ताके प्रथम चरित्र माँहि,
योगनिद्रा नाम हू ते जाहि को पुकारी है ।
ब्रह्म की सहाय ते विष्णु को जगाय,
मल्लयुद्ध करवाय मधु-कैटभ विडारी है ।
मुण्डमाल धारी अरु पाँव दशवारी पर,
दानव विगारी काज सन्तन सुधारी है ।
सोई मतवाली महाकाली सन्त प्रतिपाली,
'दिव्य' कहै रैन दिन मेरी रखवारी है ॥२॥

हाथ में पिनाक बाणपाशांकुश आयुध है,
लोचन विशाल लालमद मतवारी है ।
बसन सुरंग सोहे भूषण कनक अंग,
बिंदु एक भाल माल मणि उर धारी है ।
उदित सुबाल रवि कोटि सम कान्ति मुख,
मुदित सुमन वन कदंब विहारी है ।
सोई सुर सोई देवी महामाई त्रिपुराई,
'दिव्य' कहै रैन दिन मेरी रखवारी है ॥३॥

आगे जब अवनि पै आय के असुर जन,
देवन को दुःख दयो अमित अपारी है।
सारन सुकाज निज संतन के आई भाज,
सज सिंगार चढ़ सिंह असवारी है।
अष्टभुज माँय खड्ग शूल आदि आयुध ले,
चण्ड अरु मुण्ड शुम्भ निशुम्भ विडारी है।
सोई सुर सोई महामाई देवी त्रिपुराई,
'दिव्य' कहै रैन दिन मेरी रखवारी है ॥४॥

त्रिदेवों की मणिद्वीप यात्रा

देव सर्वोपरि सुरराई, भजो भुवनेश्वरी महामाई ॥टेर॥
सत्त्व रज तम गुण के तीनूं, देव शिव ब्रह्मा अरु विश्नू।
बैठ विमान सुभग मांई, चले वे सैर करन तांई।
चन्द्र सूर्य जन भूर्भुवर आदि चतुर्दश लोक,
लोकाधीश सहित हरि ब्रह्मा शंकर अन्य विलोक,
हुए विसमित अति मन मांई। भजो भुवनेश्वरी……
सरर रर रर सर रर रर, चले सुर यान सहित सुरवर,
भरा मीठा निरमल वारी, विलोका सागर इक भारी।
सुधासिन्धु के बीच में, मणियन को इक दीप,
रंगविरंगी पुष्पवाटिका, सुरतरु सघन समीप,
सदन चिन्तामणि शुभ थाई। भजो भुवनेश्वरी……।

देख ऐसा मन्दिर सुन्दर, चहा जाने को तिसके अन्दर,
उतर विमान तुरत छोरा, चले उस मन्दिर की ओर।
ार बीच पग धरत ही, देखा दृश्य अनूप.
भूषण वसन सुसज्जित हो गये, तीनों ही तिय रूप,
रहे तब मन में सकुचाई। भजो भुवनेश्वरी...... ।
हुए विसमित चित्त जाई, देखने आगे है काई,
मंच इक सुवरण को बढ़िया, कि जो है मणियन से जड़िया,
शिव हरि अज अरु ईश्वर. हैं परयंक कहार,
लोकपाल सुर सहित अप्सरा, हाजिर ह्वै दरबार,
करत नितप्रति ही सेवकाई। भजो भुवनेश्वरी....... ।
बीच सिंहासन के राजे, राजराजेश्वरी मां भ्राजे,
-९२ रवि कोटि छवि छाजे, देख मुख शरद चन्द्र लाजे।
आभूषण सोहे सरस अरु षोड़श सिंगार
हरि हर अज हुए सकोई लोक सकल निहार
मात के नख-दर्पन माँई। भजो भुवनेश्वरी ..... ।
अधर मुसकान मधुर सोहे, देख कर विश्व सकल मोहे,
बात निश्चै अब पहिचानी, पराशक्ति इनको जानी,
मन्त्र नवारण को जपा, धर हिरदे विच ध्यान,
वेदविहित स्तुति कीनी, तब पायो वरदान,
लई निज निज प्रभुताई। भजो भुवनेश्वरी.. ... ।
करे विधि तो जग को उत्पन्न, करे विष्णु पुनि प्रतिपालन,
करें फिर जाकर संहारी, समय पाकर के त्रिपुरारी।

या विधि कीनी अम्बिका ने शक्ति तीन परदान,
सावित्री, महालक्ष्मी, गौरी करन हेतु कल्यान,
नमो त्रयशक्ति समुदाई। भजो भुवनेश्वरी....... ।
लौट मंदिर बाहर आये, हरि हर ब्रह्मा हरषाये,
रूप असली पुनि प्रकटाये, पुरुष हो पुरुषत्व पाये।
निज-निज शक्ति संग ले, होय विमान सवार,
चले निरमान विश्व को, शक्ति आज्ञा अनुसार,
'दिव्य' कहता यूं सिर नाई। भजो भुवनेश्वरी······ ।

देहस्थ षट्चक्र

यह मुक्ति की दातारी है, कुल-कुंडलिनी नारी है ।।टेर।।
प्रथम चक्र है मूलाधार, वं शं षं सं अक्षर चार,
रक्त कमल दल चार, देवता गनपति मंगलकारी है।
कुल कुंडलिनी······ ।
प्रथम चक्र के ऊपर दूजो, स्वाधिष्ठान चक्र को पूजो,
बालान्तर युत षट्दल पंकज पीत देव मुखचारी है।
कुल कुंडलिनी······ ।
मणिपूर नाभिस्थल माँय, दस दल सहित सरोज सुहाय,
नील रंग ड—फ वर्ण देवता लक्ष्मीकान्त मुरारी है।
कुल कुंडलिनी······ ।
चौथो चक्र अनाहत जानो, द्वादश दल पंकल पहिचानो,
हृदय बीच क–ठ वर्ण अरुण अरु देव रुद्र त्रिपुरारी है।
कुल कुंडलिनी······ ।

चक्र विशुद्ध कण्ठ स्थान, षोड़श दल युत कमल महान,
धूम्रवर्ण स्वर षोड़श अक्षर देव जीव जहाँ जारी है।
कुल कुंडलिनी ....

भृकुटि मध्य लेवो तुम जोय, आज्ञा चक्र कमल दल दोय,
हं क्षं विद्युत् वर्ण देवता परमात्मा अधिकारी है।
कुल कुंडलिनी ....

कंज स्वेत दल सहस्र सुराजे, शीश सहित शक्ति शिव भ्राजे,
चरण सुधा रस पान करे जो, आनन्द लहै अपारी है।
कुल कुंडलिनी...... ।

कुंडलिनी शक्ति को जगाओ, चक्र भेद शिव संग मिलाओ,
'दिव्य' कहै विधि गुरु से सीखो, ये ही विनय हमारी है।
कुल कुंडलिनी...... ।

मोक्ष का स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति का साधन

प्रायः पूछा जाता है कि मुक्ति या मोक्ष क्या है ? क्या मुक्ति धन पुत्रादि की भाँति कोई स्थूल पदार्थ है ? बात यह है कि मोक्ष कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। मोक्ष का अर्थ है दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति। 'यो वै भूमा तत्सुखं' वह तो भूमा का आनन्द है जो केवल अनुभवगम्य है। अब आप प्रश्न कर सकते हैं कि क्या कोई ऐसा लक्षण है जिससे यह सुख स्पष्ट पहचाना जा सके ? हाँ, वह अति मधुर है। वह कैसा मधुर है ? क्या उसका माधुर्य दूध के समान है ? निश्चय ही, परन्तु वह दूध से कहीं अधिक मधुर है। तो क्या फिर वह चीनी-मिश्रित दूध जैसा मधुर है ? नहीं, इससे भी अधिक। फिर क्या वह चीनी, दूध मिश्रित दही के समान है ? नहीं,

वहिरंग साधना

यम, नियम, आसन और प्राणायाम को बहिरंग साधन कहते हैं। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हैं। इसका अर्थ है हिंसा, असत्य, चोरी, ब्रह्मचर्य (वीर्यक्षय) तथा परिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह) इन पाँचों वातों का मन, वचन और कर्म से सर्वथा परित्याग करना। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—ये नियम हैं। यम और नियम के अभ्यास से इन्द्रियों का नियन्त्रण होता है और आसन तथा प्राणायाम के अभ्यास से मन की स्वाभाविक चंचलता दूर हो कर एकाग्रता प्राप्त होती है। मन ज्यों-ज्यों एकाग्र होता जाता है त्यों-त्यों वह अन्तर्मुखी भी होता जाता है। इसके अनन्तर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रूप अन्तरंग साधनों के अभ्यास की वारी आती है।

अन्तरंग साधना

प्रत्याहार—इन्द्रियों को उनके विषयों से वार-वार हटाने का नाम प्रत्याहार है। इसी का नाम इन्द्रियदमन भी है। प्रत्याहार इन्द्रियों की वहिर्मुखी वृत्ति को रोकता है।

धारणा—चित्त की एकाग्रता का नाम धारणा है। मन को किसी स्थूल पदार्थ (देवप्रतिमा आदि) अथवा सूक्ष्म विषय (ओ३म् मन्त्रादि) पर स्थिर करना धारणा है।

ध्यान—एकाग्र मन से किसी विषय का निरन्तर चिन्तन करना ध्यान है। दृढ़ (स्थिर) धारणा ही ध्यान है। धारणा और ध्यान का अभ्यास सामान्यतः नाभि, हृदय अथवा दोनों भृकुटियों के वीच में किया जाता है।

समाधि—यह ध्यान की वह दृढ़ अवस्था है जिसमें त्रिपुटी का

भान नहीं रहता है। इसमें ध्याता, ध्यान और ध्येय तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय एक हो जाते हैं। यह पूर्ण ज्ञान, परम आनन्द और शान्ति की अवस्था है। यहाँ पहुँच कर जीवात्मा परमात्मा से मिल कर एक हो जाता है। यही जीव की एकता है। यहाँ सब इच्छाएं समाप्त हो कर अहंकार और मन का निःशेष विनाश हो जाता है। इस अवस्था को जड़ अवस्था नहीं समझनी चाहिए। यह परम शान्ति और ज्ञान की देदीप्यमान चरम सीमा है।

प्रस्तुत विषय कुछ जटिल-सा है अतः इसको प्रकारान्तर से अधिक स्पष्ट कर देना उचित होगा।

जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों के कारण मनुष्य में स्वभावतः ही विषय-भोगों की प्रवल इच्छा हुआ करती है। यह इच्छा ही बन्धन का कारण है। विवेक-वैराग्य के अभ्युदय होने पर जव भोग-पदार्थों से उपरामता होती है तब मनुष्य की इच्छा संसार तथा साँसारिक पदार्थों से हट कर भगवत्प्राप्ति के लिए तीव्र हो उठती है। यह शुभेच्छा है। यह मोक्ष का कारण है। अव मुमुक्षु साधक एकान्त में बैठ कर अन्तर्जगत् में अपनी आत्मा का सन्धान करने लगता है। वह ओ३म् (परमात्मा के साकार व निराकार रूप का प्रतीक) पर ध्यान जमाता है। आसन की दृढ़ता व प्राणायाम के सतत नियमित अभ्यास के द्वारा साधक अपनी कुंडलिनी शक्ति (इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति) को जाग्रत करता है। कुंडलिनी, जो कि मूलाधार चक्र (गुदा और शिश्न के बीच) में निद्रित अवस्था में स्थित रहती है, जाग्रत हो कर ऊपर की ओर चलने लगती है। अव साधक एक प्रकार के अनुपम आनन्द का अनुभव करने लगता है। धीरे-धीरे नियमित अभ्यास से जब कुंडलिनी स्वाधिष्ठान (शिश्न-मूल) और मणिपूर चक्र (नाभि देश) को भेदन करती हुई अनाहत चक्र (हृदय देश) में पहुँचती

है तो साधक सालोक्य मुक्ति का अनुभव करता है। जब वह आगे विशुद्ध चक्र (कण्ठस्थल) में पहुँचती है तो साधक सामीप्य मुक्ति का अनुभव करता है। जब वह और आगे आज्ञा चक्र (भृकुटिस्थान) में पहुँचती है तो साधक सारूप्य मुक्ति का अनुभव करता है और जब वह इससे भी आगे बढ़कर ब्रह्मरन्ध्र (मूर्धास्थान) में पहुँचती है तो साधक सायुज्य मुक्ति का अनुभव करता है। यही परम शिव का स्थान है। यहाँ पहुँच कर जीव रूपी कुंडलिनी शक्ति शिव के साथ मिल कर एक हो जाती है। यही जीव की मुक्ति है। यही जीव शिव की एकता है। यही परमानन्द की अवस्था है। यहाँ पहुँच कर साधक अमृत का पान करता है। इसको प्राप्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है। इस समाधि अवस्था को पहुँचा हुआ मनुष्य जीवन्मुक्त कहलाता है। वह जब समाधि से बाहर आता है तो व्यवहार-दशा में लोक-सेवा करता अथवा अनासक्त हो कर विचरण करता है। उसमें कर्तृत्व अभिमान नहीं रहता है। वह न अनुकूल परिस्थितियों से प्रसन्न और न प्रतिकूल परिस्थितियों से खिन्न होता है। सदा साम्यावस्था में रहता है, निरपेक्ष रहता है। कोई भी कर्म उसके लिए बन्धनकारक नहीं होते। उसके संचित (संचित और क्रियमाण) कर्म दग्ध बीज के समान होते हैं, केवल प्रारब्ध कर्म ही शेष रहते हैं। वे भी उसके शरीरपात के साथ समाप्त हो जाते हैं। शरीर त्याग करते ही वह विदेह मुक्ति प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। उसका जन्म पुनः नहीं होता है। वह कैवल्य अवस्था प्राप्त करता है। जो साधक समाधि की अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं और केवल धारणा-ध्यान का ही अभ्यास करते रहते हैं उनको भी यथेष्ट लाभ अवश्य ही होता है। ध्यान के अभ्यासी साधक में शान्ति, मुस्कान, मुदिता, धैर्य, स्मरणशक्ति, उत्साह आदि गुणों का विकास होता है। वह सदा व्यवहारकुशल और साहसी होता है।